वनौषधि विशेषांक (द्वितीय भाग) की विषयानुक्रमणिका

ककड़ी	1	कनेर (श्वेत और लाल)	73	कसौंदी	151
ककर खिरुनी	6	कनेर पीली	78	कस्तूरिदाना	156
ककोड़ा	7	कनैकुडिया (कनकोडर)	79	कहरुवा	157
ककोड़ा बांझ	10	कनौचा	80	कहरुवा (पार्थिव द्रव्य)	158
कचनार (लाल)	14	कन्टकालु	81	कंकुष्ट (उसारे रेवन्द)	158
कचनार सफेद	20	कन्तगुरमई	81	कंगनी	159
कचनार पीला	21	कन्थारि	82	कंगु	161
कचनार भेद	22	कन्टूरी (कन्दरु)	83	कंघी (अतिबला)	161
कचरी	24	कपास	85	कंजुरा	164
कचलोरा	26	कपूर	93	कंझल	164
कचूर	27	कपूर कचरी	103	कंटकचू	165
कटकरंज	32	कपूर भेंडी	105	कंदमूल	165
कटमी	36	कपूर–पात	105	काई	165
कटमोरंगी	37	कपूरी जड़ी	105	काकजंघा नं0 1	166
कटरालि	37	कबर	106	काकजंघा नं0 2	168
कटसरिया	37	कबावचीनी	108	काकड़ासिंगी नं0 1	169
कटसोन	40	कमरकस	111	काकड़ासिंगी नं0 2	170
कटहल	40	कमरख	112	काकतुन्डी नं0 1	171
कटेरी छोटी	41	कमल	113	काकनासा (काकतुण्डी नं0 2)	172
कटेरी बड़ी	47	कमाझरियंस	119	काकनज	173
कठगूलर	48	कमीला	120	काकमारी	174
कड़वी तुम्बी	51	करंज	122	काकोली (और क्षीर काकोली)	176
कड़वी तोरई	54	करली	126	काजू	176
कड़वी नायंकन्द	57	करियसिन	126	कादिकपान	178
कड़वी परवल	59	करिवागेटी	127	कानछिड़े	178
कड़ौंची	60	करील	127	काफी	179
कन्टाई	61	करेरुआ	130	कामरूप	181
कन्टला	62	करेला और करेली	133	कायफल	181
कण्टिआरी	62	करोई	136	कायापुटी	185
कण्टालु	62	करौंदी, करौंदा	136	कालमेघ	186
कताद	63	कर्टीला	138	काला डामर	188
कथई	63	कलबास	139	कालादाना	188
कदम	63	कलमीशाक	139	कालीजीरी	190
कद्दू नं0 1 (लौकी मीठी तुम्बी)	66	कलम्बा	140	काली मिर्च	192
कद्दू नं0 2 कूष्माण्ड	67	कलिहारी	141	कास	197
कद्दू नं0 3 श्वेत कद्दू पेठा	68	कलुरुकी	146	कासनी	198
कनकचम्पा	71	कलौंजी	146	काहू	200
कनकौवा	72	कल्पवृक्ष	149	कीड़ामार	202
कनफोड़ा	72	कसेरु	149	कुंभी	203

कुकरोंदा	204
कुकुर जिव्हा	207
कुकुर विचा	207
कुचला	208
कुचले का मलंगा	217
कुचला लता	218
कुटकी (सफेद या देशी)	218
कुटकी काली	221
कुड़ा	222
कुत्रा	228
कुन्द	229
कुप्पी	230
कुमुद	231
कुशल	234
कुलथी	234
कुलफा	236
कुलाहल	238
कुलिंजन	239
कुश	241
कुसुम	242
कुसुन्ट	244
कूठ	244
कृष्णछत्रक	249
केला	249
केला जंगली	256
केवड़ा	257
केवांच	260
केसर	263
कैथ	267
कैल	270
कोकम	270
कोकीन	272
कोको	273
कोटगन्धल	274
कोंढ़िया घास	275
कोदों	275
कोधव	276
कोन्दई	277
कोसुम	277
कोहुबर बूटी	278
कौहिबांग	279
क्वासिया	279
खजूर (छहारा)	280
खजूरी	285
खरखटी	288
खतमी	288
खरबूजा	290
खरैटी	292
खरैंटी–लता (नागबला)	296
खस	297
खसखस	298
खिडनाऊ	301
खिरनी नं0 1	301
खिरनी बड़ी नं0 2	303
खीरा	303
खुब्बाजी नं0 1	304
खुब्बाजी नं0 2	305
खूबकला	305
खेसारी	306
खैर	307
खोर (खैर सफेद)	311
खैर चिनाय	311
गंगेरन (छोटी) नागबला	312
गंगेरन बड़ी	314
गंजनी	314
गन्दना	315
गम्भारी	316
गजपीपल	318
गठिवन (गठौना)	319
गन्धपूरा	321
गन्धप्रसारणी	321
गरजन	323
गाजर	325
गावजवाँ नं0 1	328
गावजवाँ नं0 2 (गाजिया)	329
गिलोय	331
गीदड़ तमाखू	339
गुंजा	340
गुड़मार	344
गुड़हल	346
गुरलू	348
गुलखैरू	349
गुलतुर्रा नं0 1	349
गुलतुर्रा नं0 2	350
गुलदाउदी	351
गुलबकावली	352
गुलदुपहरिया	352
गुलवास	352
गुलमेंदी	354
गुलशब्बो	354
गुलाब	355
गुलाब सफेद	358
गुलू	359
गुवार फली	360
गूगल	361
गूमा	365
गूलर	369
गेंदा	374
गेहूँ	375
गोखरू छोटा	378
गोखुरू बड़ा	381
गोधापदी	383
गोबरा	384
गोभी	384
गोरख इमली	387
गोरखपान	388
गोरखमुण्डी	389
गोविल	395
ग्वारपाठा	395
ग्वारपाठा लाल	404
घनसर	404
घामुर	405
घिया तोरई	405
घुइयां	406
घोगर	407

ककड़ी (Cucumis Utilissimus)

यह आयुर्वेदानुसार शाकवर्ग की तथा आधुनिक निघण्टु के अनुसार कर्कोटकी या कर्कटी वर्ग[1] (Cucurbitacae) की एक प्रमुख नवस्पति है।

ककड़ी कई प्रकार की होती है। ये सब प्रकार वास्तव में खीरा (त्रपुष) या कर्कटी वर्ग के उद्भिद विशेष हैं। ये सब एक दूसरे से गुणादि में भिन्न हैं। प्रस्तुत प्रसंग में जिस ककड़ी का वर्णन किया जाता है, उसे देशी भाषा में डंगरी या डांगरी ककड़ी या जेठुई ककड़ी कहते हैं। संस्कृत में 'एर्वारु' या 'उर्वारु' इसे ही कहते हैं। इसका भेद मीठी ककड़ी या खीरा ककड़ी है, जिसके विषय में कहा गया है कि– 'एवारुक मधुर कर्कटी'। इसे 'खीरा' के प्रकरण में देखिये। फूट ककड़ी इसका ही एक दूसरा भेद है। इसे 'फूट' के प्रकरण में देखिये।

1. इस वर्ग की वनस्पतियां ऊपर की ओर बढ़ने वाली या इतस्ततः फैलने वाली छोटी या बड़ी निर्गन्ध लता रूप में होती हैं, जो प्रायः वर्षायु होती हैं। कुछ बहु वर्षायु भी होती हैं। इनमें से कुछ लतायें विष जैसी अत्यन्त कडुवी तथा कुछ निर्विषैली एवं मधुर होती हैं।

वर्षायु लता की जड़ छोटी होती हैं और बहुवर्षायु की जड़ें कुछ लम्बी, गांठदार एवं कन्दयुक्त होती हैं। मधुर या निर्विषैली लताओं (ककड़ी, खीरा, खरबूजा आदि) के फलों में शक्कर का अंश होता है, तथा विषैली लताओं के फल अत्यन्त कडुवे व जड़ों में पिष्टमय अंश होता है (इन्द्रायण, जंगली तुरई, कड़वी नाय आदि)।

इन लताओं में से तागे जैसे तन्तु निकलते हैं। पत्ते अन्तर से निकलते हैं, वे डण्ठल के पास प्रायः हृदयाकृति, किनारे कोर दार, विभक्तदल एवं खुरदरे होते हैं। फूल–पत्र कोन से प्रायः पीले या श्वेत वर्ण के निकलते हैं। नर और मादा फूल प्रायः एक ही लता पर भिन्न भिन्न आते, अथवा एक बेल पर नर फूल गुच्छाकार, व दूसरी बेल पर गुच्छा रहित अकेला मादा फूल लगता है। पुष्पपात्र घंटाकृति, पांच धारी वाला, बीज कोष–संयुक्त होता है। फल गूदेदार, अत्यधिक जलयुक्त होता है। फल में बीज भी अत्यधिक होते हैं, जो प्रायः चिपटे, चिकने और तेल युक्त होते हैं।

इस वर्ग की वनस्पतियां–चिरगुणकारी, पौष्टिक, पाचक, वायुहर, उपलेपक, मूत्रल, रेचक, वामक, तथा ज्वर कृमि, शोथ आदि नाशक गुणों से युक्त होती हैं। –लेखक।

डन्गरी डांगरी चैव दीर्घोवारुश्च डांगरीः। डांगरी नागशुण्डी च गजदतफला मुनिः। इत्यादि–निघण्टु रत्नाकरे।

यह डंगरी ककड़ी प्रायः खरबूजे के समान होने से किसी किसी ने इसका भी अंग्रेजी नाम Cucumis Melo अर्थात् खरबूजा रख दिया है। किन्तु खरबूजा इससे भिन्न है। आगे 'खरबूजा' का प्रकरण देखिये। ककड़ी (डंगरी), खीरा और खरबूजा इन तीनों के बीज यद्यपि देखने में एक समान दिखाई देते हैं, तथापि भेद यह है कि ककड़ी के बीज, खीरा बीज की अपेक्षा अधिक श्वेत, वजन में भारी और उत्कृष्ट होते हैं। ककड़ी बीज खरबूजे के बीजों की अपेक्षा अधिक चौड़े, श्वेत, हलके, कुछ छोटे, चिकने और विशेष गंधयुक्त होते हैं।

ककड़ी Cucumis Satirus Linn.

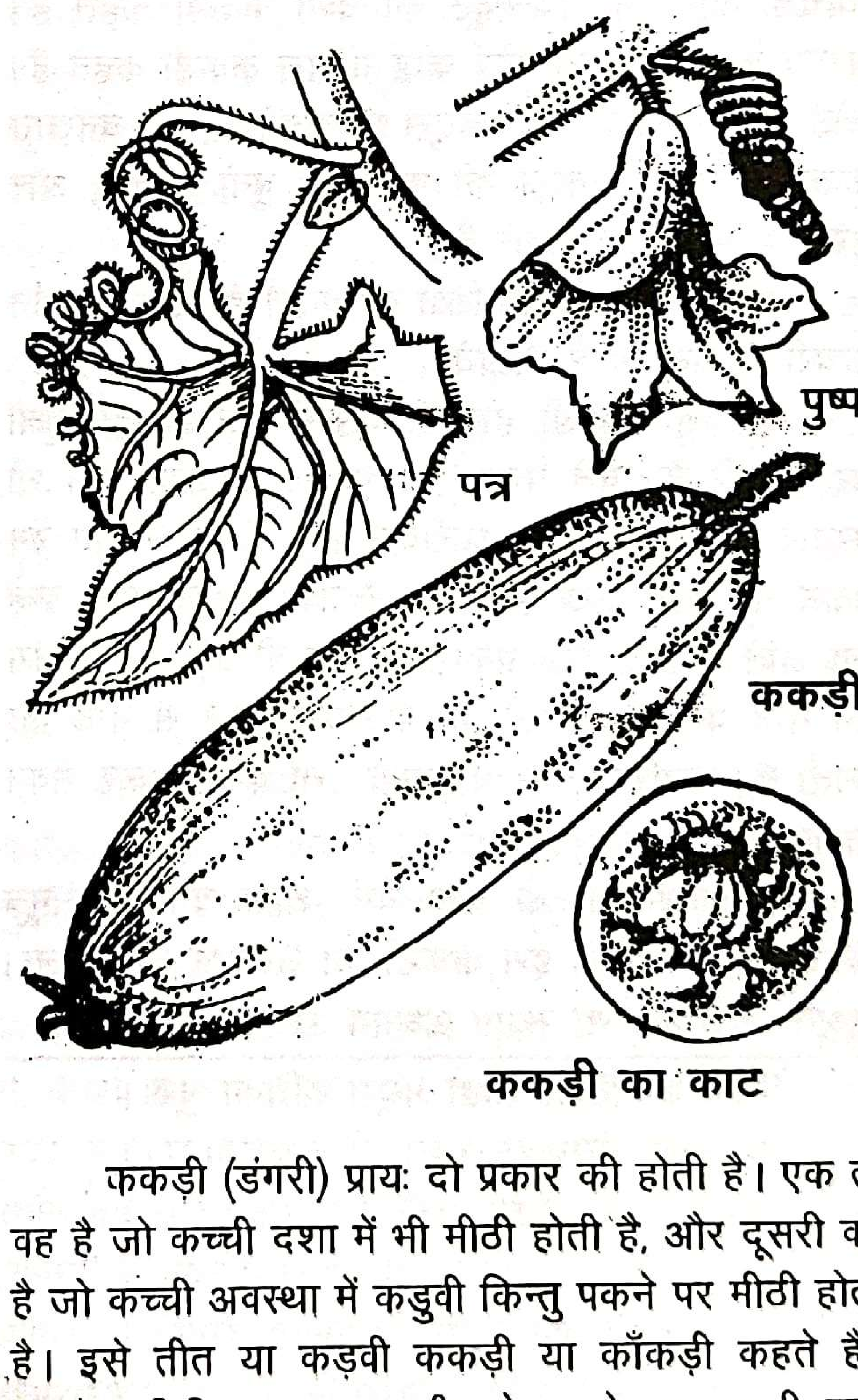

ककड़ी (डंगरी) प्रायः दो प्रकार की होती है। एक तो वह है जो कच्ची दशा में भी मीठी होती है, और दूसरी वह है जो कच्ची अवस्था में कडुवी किन्तु पकने पर मीठी होती है। इसे तीत या कड़वी ककड़ी या कॉकड़ी कहते हैं। इसके अतिरिक्त वह ककड़ी जो पकने पर फटती नहीं और स्वाद में कुछ कुछ खट्टी होती है बंगला में 'गुमुक' कहलाती है। कोई कोई बंग वासी कहते हैं कि 'गुमक' वह सफेद ककड़ी है, जो पकने पर फट जाती है। ईरानी

चिकित्सकों ने इसके दो भेद इस प्रकार दर्शाये हैं। एक तो वह जो मोटी, बड़ी, अधिक गूदावाली तथा कम बीजों वाली होती है। इसे 'खियार्जः गाजरुनी' कहते हैं तथा यह रबी की फसल के आरम्भ में होती है। दूसरी वह जो पहली किस्म से छोटी, अधिक बीजों वाली, तथा ग्रीष्म ऋतु के बाद पैदा होती हैं। इसके बीज कोमल होते हैं। इसे 'खियार्जः नैशापुरी' या छोटी ककड़ी कहते हैं। छोटी ककड़ी बड़ी की अपेक्षा विशेष मधुर होती है। किन्तु दोनों प्रकार की ककड़ियां खूब पकजाने पर खट्टी पड़ जाती हैं। — आ. वि. कोष.

इनके अतिरिक्त आयुर्वेदीय निघण्टु के अनुसार उक्त शाक वर्ग में चीनो[1] कर्कटी, अरण्य कर्कटी, गोपाल कर्कटी आदि का उल्लेख किया गया है। चीना ककड़ी को कोई चिचिड़ा और कोई चित्रकूट की देशी ककड़ी कहते हैं। अरण्य ककड़ी को ही कोई कोई गोपाल ककड़ी कहते हैं। कोई इसी को कचरी या पेहंटुल भी कहते हैं। इस वनजात कर्कटी, जंगली ककड़ी को बंगला में बुनो कांकुड़, और मरेठी में राणतवसे कहते हैं।

गोरख ककड़ी—कचरिया को कहते हैं। इसका वर्णन कचरी के प्रकरण में देखिये।

एक 'गुलककड़ी' होती है जिसकी बेल झाड़दार वृक्षों पर फैलती है। पत्ते परवल के पत्ते जैसे, तथा फल भी परवल से मिलते जुलते धारीदार होते हैं। फलों का रंग पकने पर लाल सुर्ख हो जाता है तथा जंगली पक्षी इन्हें खा जाते हैं। यह एक प्रकार की जंगली कुंदरु है। प्लेग की गाँठ पर इसके पत्तों को पीसकर बाँधने से गाँठ बैठ जाती है। मलेरिया ज्वर में इसके पत्तों को पीसकर सेवन कराते हैं।

चरक संहिता के फल वर्ग, शाक वर्ग और मूत्र विरेचनीय वर्ग में भी इस कर्कटी का उल्लेख नहीं मिला। सुश्रुत[2] के चिकित्सा स्थान अध्याय 31 में त्रपुष, कर्कारु, तुम्बी और कूष्माण्ड के बीजों का तेल मूत्र-रोध में हितकारी कहा गया है तथा मूत्र व वीर्य दोष के निवारणार्थ सफेद ककड़ी को दूध के साथ प्रातः काल पीने के लिये कहा गया है। यह श्वेत ककड़ी वही है जिसे आजकल बालम ककड़ी कहते हैं।

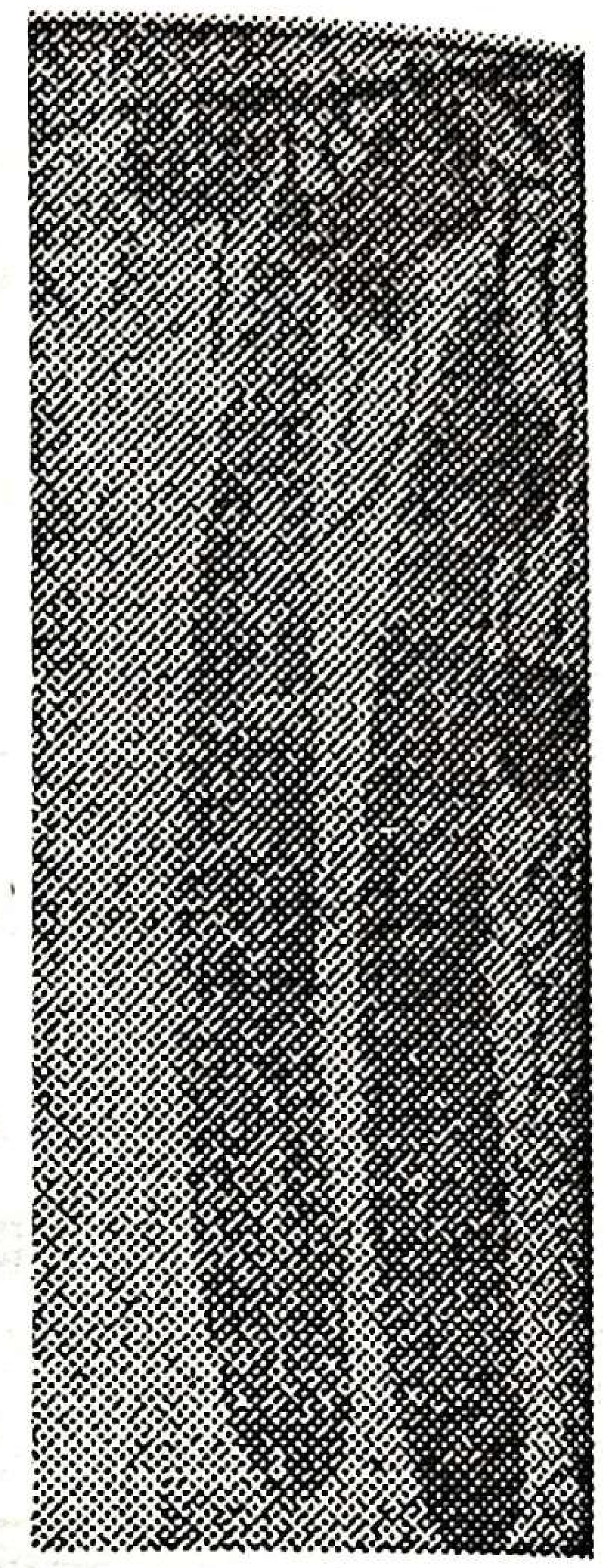

ककड़ी

नाम—

सं0—कर्कटी, वृहल्फला, हस्तिदंतफला, मूत्रफला, एर्वारु

हिन्दी—ककड़ी, डंगरी या जेठुई ककड़ी, तरकाकड़ीं

मराठी—काकड़ी वालुक।

गुजराती—कांकड़ी

बंगला—कांकुर, बड़ाकांकुड़

अंग्रेजी—ककुम्बर (Cucumber)

लेटिन—क्युक्युमिस युटिलिस्सिमस

उत्पत्ति स्थान—

उत्तर प्रदेश, राजपूताना, बंगाल, सीमाप्रांत, (उत्तरी पश्चिमी सूबा), पंजाब, बम्बई, खानदेश आदि स्थानों की रेतीली भूमि तथा नदियों के किनारे खूब बोई जाती है और विपुलता से होती है।

विवरण—

यह प्रायः फागुन या चैत मास में बोई जाती है। इसकी बेल खीरा ककड़ी की बेल जैसी ही खूब लम्बी फैलती है। पत्ते पंचकोणाकार कंगूरेदार खीरे के पत्तों से कुछ छोटे और चिकने होते हैं। फूल पीले रंग का होता है। फल—यह वैशाख या जेठ मास में फलती है। इसीलिये यह जेठुई ककड़ी कहलाती है। दक्षिण में इसे ही बालुक कहते हैं। इसके फल खीरे की अपेक्षा लम्बे, मोटे, गोलाकार, कुछ मुड़े हुए, लगभग 1 या 1½ हाथ तक लम्बे होते हैं। फलों पर लम्बाई के रुख उभरी हुई रेखायें होती हैं। स्थल विशेष के कारण कहीं कहीं इसकी खूब लम्बी और कहीं कहीं छोटी ककड़ियाँ देखने में आती हैं। कच्ची छोटी अवस्था में ये ककड़ियाँ खूब नरम, हरे रंग की तथा रायेंदार होती हैं। बढ़ने या बड़ी होने पर ये कुछ पांडु वर्ण (श्वेत और पीली) भी हो जाती हैं तथा पक जाने पर विशेष लालिमायुक्त पीली पड़ जाती हैं, कच्ची अवस्था में ही अधिकतर यह खायी जाती हैं, तथा इसका साग बनाया

---

1. ''चीनाकर्कटिका शीता मधुरा रुचिका गुरुः।
फलवाततृप्तिकरी हृद्या पित्तरुजापहा।।
दाहशोषहराप्रोक्ता मुनिभिश्चरकादिभिः।
अरण्यकर्कटी चोष्णा रसे तिक्ता च भेदिका।।
पाके कट्वीकफ कृमि पित्तकण्डूज्वरापहा।
गोपालकर्कटी—शीतला मधुरा पित्तघ्नी मूत्रकृच्छ्राश्मरी मेहदाह शोषघ्नी।''

2. ''त्रपुसोर्वारु कर्कारुक तुम्बीकूष्माण्ड स्नेहाः मूत्र संगेषु।'' यथा—''श्वेत कर्कटकं चैव प्रातस्तं पयसा पिबेत्।।
—सु0 उ0 58 अ0

जाता है। यह ककड़ी वर्षा ऋतु में भी होती हैं किन्तु उक्त ग्रीष्म ऋतु की श्रेष्ठ गुणदायक होती हैं। वर्षा व शरद ऋतु की रोगकारक मानी जाती हैं। कहा है "सर्वाः कर्कटिका वर्षा शरदि जाता न हिताः।" (नि0 रत्नाकर) ग्रीष्म और हेमंत में होने वाली ककड़ी विशेष रुचिकारक, पित्तनाशक और हितकारी होती हैं।

इसी ककड़ी का एक भेद बालुक या क्षेत्र कर्कटी है। यह ऊपर से थोड़ी बालुकायुक्त होती है, अतः 'बालुक' कहाती है। इसकी बेल में बहुत फल लगते हैं, अतः 'बहु फला', प्रायः शरदकाल में फलती है, अतः 'शारदिका' तथा प्रायः खेतों में होने से क्षेत्ररुहा, क्षेत्रकर्कटी आदि कहाती है।

ककड़ी शीत गुण प्रधान होने से इसके अधिक सेवन से शरीर में कफ वात के विकार पैदा हो जाते हैं। इसके ऊपर का छिलका छीलकर अन्दर के गूदे के टुकड़े कर काली मिर्च व नमक का चूर्ण मिला खूब मसल डालनेपर जो जल निकले उसे दूर कर दें, और फिर उन टुकड़ों को खाने से कोई हानि नहीं होती। ककड़ी के अन्दर से जल निकलता है उसे गूंधे हुए गेंहूँ के आटे में मिला देने से आटे की चिकनाहट (स्निग्धता) दूर हो जाती है, वह रूक्ष हो जाता है।

गुणधर्म–

आयुर्वेदीय मतानुसार–

ककड़ी– शीतल, रुचिकारक, मूत्रल, तृप्तिकारक, तथा मूत्रावरोध, दाह, पित्त, रक्त विकार, तृषा, शोष, जड़ता, वमन, श्रम आदि नाशक है। मधुमेह में लाभकारी है।

कच्ची कोमल ककड़ी– मधुर, शीतकर, हल्की, रुचिकारक, तृप्तिकर, मूत्रल, पुष्टिदायक, वीर्यरस्तम्भक, तथा पित्तप्रकोप, दाह, भ्रांति, मूत्रावरोध, मूत्रकृच्छ, अश्मरी, वमन, श्रम, रक्तपित्त, रक्तविकार आदि नाशक है। यकृत को शांतिकर है। अत्यन्त मूत्रल होते हुए भी जीर्ण ज्वर को उभार करने वाली वायु तथा गुल्म को उत्पन्न करती है। अधिक सेवन करने से यह भारी, अजीर्ण कारक वात ज्वर कारक होती है।

बालुक कच्ची– शीतल, मधुर, भारी, आध्यमानकारक, हृद्य, रुचिप्रद, खाँसी और पीनस को पैदा करने वाली तथा श्रम और पित्तनाशक है।

पकी ककड़ी– बेल की पकी हुई–मधुर, कच्ची की अपेक्षा कुछ उष्ण, कफनाशक, अग्निवर्धक, पाचक, रक्तदोष्कारक, पित्तकारक होते हुए भी प्यास और दाह निवारक तथा वमन श्रमक्लांति को दूर करती है। घर में रखने से पकी हुई ककड़ी में उक्त गुणों के साथ ही कफ और वात नाशक विशेष गुण पाये जाते हैं।

बालुक पकी– हलकी, अग्निकृत, भेदी और रक्तपित्त नाशक होती है।

अधपकी ककड़ी– खाँसी और पीनस को उत्पन्न करती है।

ककड़ी का छिलका– कडुवा, कफपित्तनाशक, पाचक और अग्नि प्रदीपक होता है।

केवल ककड़ी को छीलकर खिलाने से या ककड़ी को पीसकर उसमें प्याज का रस मिला सेवन कराने से मदात्यय (शराब का नशा) में, ककड़ी के रस में नीबू रस तथा थोड़ा जीरा व मिश्री मिला पिलाने से मूत्रकृच्छ, मूत्रदाह में, ककड़ी के छोटे छोटे टुकड़े कर शक्कर मिला सेवन करने से मूत्रदाह व मूत्ररोध में, ककड़ी को पीसकर गरम कर बाँधने से जानुशोथ व गृध्रसी में तथा पकी हुई जूनी ककड़ी के रस में बिड़लोन व सेंधानमक मिला नस्य देने से गलगंड में लाभ होता है। ककड़ी को खिलाकर ऊपर से खट्टा छाछ पिला अग्नि का सर्वांग बफारा देकर स्वेदन कर्म करने से जीर्ण ज्वर का नाश होता है, किन्तु यह गाँवठी इलाज है। अनुकरणीय नहीं है।

ककड़ी के बीज– मधुर, पुष्टिप्रद, शीतल तथा दाह, मूत्रकृच्छ, प्रदर आदि नाशक हैं। बीजों से निकाला हुआ तेल गुण में बहेड़े के तेल के समान होता है। यही गुण फट ककड़ी के बीजों का है। यह तैल वातपित्त नाशक, बालों के लिये हितकारी, कफकारक, भारी और शीतल होता है।

बीजों को अच्छी तरह पीसकर दाख या किसमिस के क्वाथ में मिला सेवन करने से मूत्रकृच्छ में, बीजों को मुलैठी और दारुहल्दी समभाग चूर्ण के साथ पीसकर चावलों के धोवन के साथ सेवन से पित्तज मूत्रकृच्छ में, बीजों को पीस क्वाथ सिद्धकर सेवन से जीर्ण विषम ज्वर में, बीजों के साथ जीरा और शक्कर मिला सेवन से श्वेत प्रदर में और इसी प्रयोग में कमल की पंखुड़ियाँ मिला सेवन करने से रक्त प्रदर में लाभ होता है। बीजों की खीर (यवागू) बनाकर पीने से मूत्र नलिका का दाह (जलन) दूर होकर मूत्रेन्द्रिय तथा जननेन्द्रिय के रोग नष्ट होते हैं, पुष्टि प्राप्त होती है। गर्मी के दिनों में ककड़ी के बीज ठंडाई में घोटकर पिये जाते हैं। ये कांतिप्रद, रुधिर की दाह तथा तृष्णा को शमनकर्ता, प्रकृति को प्रसन्न करने वाले हैं। बीजों का लेप मुख की मलीनता को दूर करता है। ये बीज मसाने की पथरी के लिए विशेष लाभकारी होते हैं। बीजों

के साथ जीरे को पीसकर मिश्री मिला जल में घोट छानकर पीने से मूत्राघात में विशेष लाभ होते देखा गया है।

नोट– ककड़ी भी ऐसे नमक मिर्च के साथ खायी जाती है, इसका साग भी उत्तम होता है तथा इसके छोटे छोटे टुकड़े कर सिरके में छोड़कर नमक मिलाकर खाया जाता है। कद्दू कस में कसकर दही या छाछ मिला उसमें हींग और राई का छौंक देकर जो रायता बनता है वह भी उत्तम रुचिकारक, जठराग्निबर्धक होता है।

कडुवी ककड़ी– रस और पाक में चरपरी, मूत्रल, वमनकारक तथा मूत्रकृच्छ,आध्मान और अष्ठीला नाशक है।

चीना ककड़ी– शीतल, मधुर, रुचिदायक, भारी, कफवातकारक, तृप्तिजनक, हृद्य तथा पित्त रोग, दाह और शोथनाशक है।

अरण्य (जंगली) ककड़ी– उष्ण, तिक्त, भेदक, पाक में कटु तथा कफ, कृमि, पित्त, कण्डु (खुजली) और ज्वरनाशक है।

यूनानी मतानुसार–

कद्दू या खीरा की अपेक्षा ककड़ी अत्यधिक जलीयांश युक्त होने से दूसरे दर्जे में या दूसरे दर्जे के अन्त में सर्द और तर है। प्यास को बुझाती है, पित्त या रक्तप्रकोपजन्य उग्रता, दाह तथा यकृत की गर्मी को शान्त करती है। मूत्रल और भूख को बढ़ाती है, पित्तातिसार को नष्ट करती है। यह शीघ्र पचती है, किन्तु दोषों को शीघ्र प्रकुपित भी कर देती है। इसमें पौष्टिक या धातुपरिवर्तक शक्ति खरबूजे से कम होती है, किन्तु बस्ति (मूत्राशय) के लिए यह बहुत अनुकूल है। अत्यधिक सेवन से यह ज्वर पैदा करती है। इसे खूब चाबकर खाना चाहिए जिससे यह आमाशय में विकृत न हो सके। अन्यथा यह अत्यन्त दूषित प्रकार के रोग पैदा कर देती है। कहा जाता है कि यदि यह दूध पीने वाले छोटे बालक के बिछौने पर रख दी जाय तो यह उसके ज्वर को खींच लेती है और स्वयं अत्यन्त कोमल (मुलायम) हो जाती है।

जिस ककड़ी में कुछ खटास (अम्लता) हो, वह अत्यधिक सर्द व तर होती है। यह अपने सर्द (शीतल) गुण से पित्त या गरमी को दूर करती है। विशेषतः खटासयुक्त परिपक्व ककड़ी में यह गुण अधिक पाया जाता है। पित्त की शांति के साथ ही यह अन्यान्य विकारों को खड़े कर देती है। रक्त में जलीयाँश की वृद्धि एवं वायु को उत्पन्न कर कूल्हों में और पेट में शूल (कुलंज) तथा चिरस्थायी ज्वर आदि पैदा करती है।

कच्ची ककड़ी अपने सुगन्धयुक्त शीतल गुणों से गरमी की मूर्छा को (केवल सुंघाने मात्र से) दूर करती है। प्यास को दूर करती है तथा रक्त प्रकोप, आमाशय और यकृत की हरारत (ऊष्मा), दाह व पित्त प्रकोप को शमन करती है। बस्ति और गुर्दों की पथरी को निकालती है, इस कार्य के लिये कडुवी ककड़ी विशेष गुणकारी होती है।

हानिकर्ता–ककड़ी शीतल प्रकृति को हानिकारक है आमाशय में शीघ्र विकृत होकर अफरा, अजीर्ण और कुलंज (उदर शूल) पैदा करती है। दर्पघ्न द्रव्यों के बिना इसका अत्यधिक सेवन करते रहने से यह ऐसे ज्वर पैदा कर देती है, जो बड़ी मुश्किल से छूटता है।

दर्पघ्न–शीतप्रकृति का व्यक्ति यदि ककड़ी का सेवन करे तो साथ में नमक, कालीमिर्च, अजवायन, मुनक्का और सौंफ लेवे। उष्ण प्रकृति का व्यक्ति इसके साथ थोड़ा सौंफ और सिकन्जबीन ले लिया करे तो उसे और भी लाभ हो।

प्रतिनिधि– ककड़ी के अभाव में खीरा या लम्बा कद्दू (लौकी) ले सकते हैं।

ककड़ी के बीज– पहले दर्जे में सर्द और तर हैं, कुछ लोग इसे दूसरे दर्जे में सर्द व तर मानते हैं। ये मूत्रल होते हुये भी किंचित दस्तावर हैं, यह इनमें विशेषता है। ये स्रोतसों को खोलने वाले, कांति को बढ़ाने वाले, रक्त के जोश, पित्त प्रकोप व प्यास को बुझाने वाले हैं। आमाशय, प्लीहा और यकृत में अत्यधिक गरमी से सूजन आदि विकार हो गये हों तो इनका सेवन लाभदायक होता है। ये फेफड़ों को शुद्ध करते हुये तदन्तर्गत वेदनायुक्त क्षतों को लाभ पहुँचाते हैं। पित्त की खांसी को दूर करते हैं। पित्त या गरमी के दिनों में ये उष्णता को मूत्र द्वारा निकाल बाहर कर लाभ पहुँचाते हैं। मूत्र की दाह और जलन को दूर करते हैं। इनका क्वाथ या फांट रूप में सेवन विशेष लाभकारी होता है। हलुवा कुछ कब्जी करता है। ये खीरे के बीजों की अपेक्षा अधिक पुष्टि और उत्साहवर्धक हैं, किन्तु खरबूजे के बीजों की अपेक्षा इनमें वह शक्ति कम दर्जे की पायी जाती है। अतः विशेष लाभ के लिये इन्हें खरबूजा या खीरा के बीजों के साथ सेवन किया जाता है। इनके बीजों की सेंकी हुई मींगियों का चूर्ण अत्यन्त मूत्रल होता है।

बीज लगभग 7½ माशे तक पानी में पीस छानकर पिलाने से मूत्रवृद्धि होकर मूत्ररोध में तथा बीजों के साथ जवाखार मिला पीस छानकर सेवन से मूत्र की जलन, मधुमेह और पथरी में लाभ होता है। बीजों की मिंगी को शक्कर में पागकर सेवन करने से शरीर पुष्ट और बलवान

होता है। बीजों की मिंगी को पीसकर प्रलेप करते रहने से त्वचा मुलायम होकर चेहरा निखर उठता है। मिंगियों का तेल जलाने और खाने के काम में आता है।

हानिकर्ता— बीजों का विशेष सेवन प्लीहा तथा प्रतिश्याय के रोगी को हानिकर होता है। दर्पघ्न सिकंजबीन अथवा शहद व मकोय इसके हानि निवारक हैं। इनके अभाव में खीरा के बीज प्रतिनिधि रूप में लिये जाते हैं। मात्रा—6 माशे से 9 माशे तक, कोई—कोई इसकी मात्रा 17½ माशे से 3 तोले तक लेते हैं।

बीजों का छिलका— दीर्घपाकी, वायु, उदरशूल और वमन कारक होता है।

ककड़ी की जड़— वमनकारी है। इसे पीसकर शहद और जल के मिश्रण के साथ लेने से वमन होते हैं।

ककड़ी के पत्ते— पागल कुत्ते के काटे हुये को (जलसंत्रास रोगी को) तथा कफजन्य अर्बुद और उदर्द पीड़ित रोगी को लाभकारी हैं। इसके ताजे पत्तों को पीसकर शहद मिला कफज उदर्द में पित्तियों पर मर्दन करने से लाभ होता है। इसकी शुष्क पत्तियाँ पित्तज अतिसार में लाभ पहुँचाती हैं।

आधुनिक मतानुसार— ककड़ी में प्रतिशत 96.4 पानी, 0.3 खनिज पदार्थ, 0.4 प्रोटीन, 0.1 वसा, 2.8 कार्बोहाइड्रेट, 0.01 कैलशियम, 0.03 फासफोरस तथा लौह प्रति सौ ग्राम 1.5 मिलीग्राम, विटामिन बी प्रति सौ ग्राम 30 इ0 यू0, विटामिन सी प्रति सौ ग्राम 7 मिलीग्राम, और विटामिन ए नाम मात्र को रहता है। (हेल्थ बुलेटिन नं0 23)

ककड़ी शीतल, पाचक और मूत्रजनन है। गेहूँ, ज्वार, मक्का, अरहर, उड़द, मूंग आदि माँसल (गरिष्ठ) अन्न खाने से होने वाले अजीर्ण में ककड़ी खाने से लाभ होता है। कुपचन (अजीर्ण) रोग के मुख्य 3 प्रकार हैं— प्रथम प्रकार में (आमाशय के पाचक रस की उत्पत्ति कम या न होने से) माँसल (भारी) भोजन का पाचन नहीं होता है। दूसरे प्रकार में (पाचक रसमें तीव्रता और अम्लता की वृद्धि होने से) चावल नहीं पचता, तथा तीसरे प्रकार में (यकृत के पित्त का स्राव कम होने से) घृत, तेल आदि स्निग्ध पदार्थों का पचन नहीं होता। इनमें से प्रथम प्रकार के अपचन में ककड़ी हितकर है। भोजन के साथ या भोजन के बाद ककड़ी खिलाई जाती है। ककड़ी और प्याज के रस के सेवन से शराब का नशा दूर होता है।

ककड़ी के बीज शीतल, मूत्रजनन और बल्य हैं। अजीर्ण से वमन होते हों, तो बीजों को छाछ में पीसकर पिलाते हैं। जलन और मूत्रेन्द्रिय के रोगों में बीजों का यूष बनाकर देने से मूत्र की जलन मिटती है। ऐसी दशा में ककड़ी, कद्दू, खरबूज और तरबूज के बीजों के मिश्रण का यूष सिद्ध कर अधिकतर दिया जाता है। श्वेतप्रदर में ककड़ी के बीजों के साथ कमल के बीज, जीरा और मिश्री का सेवन कराते हैं। रक्त प्रदर हो तो उक्त प्रयोग में कमल पुष्प की पंखुड़ियाँ मिलाते हैं।

ककड़ी के पत्तों की भस्म—श्लेष्म निस्सारक होती है। श्वासनलिका के शोथ में यह भस्म दी जाती है।

डा0 देसाई (औषधि संग्रह)

कच्ची ककड़ी में आयोडीन होता है। यह घेंघा के लिये लाभदायक है। इसको कुचलकर रस निकालकर पीने से यह अधिक लाभ करती है। इसके रस से हाथ मुँह धोने से वे फटते नहीं हैं, मुंह पर सौन्दर्य आता है। गरमी में पैदा होने वाली कोमल ककड़ी अत्यधिक लाभदायक है, क्योंकि उसमें तरावट रहती है। ककड़ी खाकर तुरन्त भोजन नहीं करना चाहिये। जब पच जाय तभी खाना चाहिये। यदि ककड़ी कड़ी हो तो उसका रस निकाल कर पीना अधिक अच्छा है। हिन्दुस्तानी एलोपैथ कहते हैं कि ककड़ी खाने से हैजा होता है। इस कथन की सत्यता में संदेह है। ककड़ी कतर कर खिलाने से शराब का नशा उतर जाता है। ककड़ी काटकर सूंघने से बेहोशी जाती रहती है।

—कविराज महेन्द्रनाथ पाण्डेय (फल चिकित्सा)

ककड़ी का बीज शीतल, खाद्योपयोगी, तथा मूत्रल है। वेदनायुक्त मूत्रकृच्छ्र एवं मूत्रावरोध में इसका उपयोग होता है। ककड़ी बीज 2 ड्राम, पानी में पीसकर कल्क बनाते हैं और उसे अकेले या नमक और कांजी के साथ सेवन कराते हैं। —डा0 उ0 च0 दत्त

डाक्टर राक्सवर्ग का कथन है कि ककड़ी के शुष्क बीजों का चूर्ण तीव्रमूत्रल है, तथा यह पथरी रोग में लाभकारी है। डा0 चोपड़ा के मत से ककड़ी बीज शांतिदायक और मूत्रवर्धक हैं।

ककड़ी के फूलों को घृत में छोंककर सेंधा नमक और कालीमिर्च मिलाकर बनाई हुई साग रक्तविकृति में लाभकारी है। ककड़ी के फूलों का ताजा रस सलाई से नेत्रों में आंजने से जलन, दाह दूर होकर तरावट पहुँचती है। नकसीर में फूलों के रस की नस्य देते हैं। —लेखक।

रोगानुसार मुख्य प्रयोग–

(1) मूत्रकृच्छ्र, मूत्रावरोध मूत्राघात पर –ककड़ी का रस 2 तोला में जीरा चूर्ण 4 माशे तथा थोड़ा नीबू रस और मिश्री या शक्कर मिला पिलावें। अथवा–

ककड़ी के बीजों के साथ गोखरू, पाषाण भेद, इलायची, केशर और सेंधा नमक समभाग पीसकर महीन चूर्ण बना रक्खें। मात्रा 4 से 6 माशे चूर्ण को चावल के धोवन के साथ सेवन करने से घोर असाध्य मूत्रकृच्छ्र में भी लाभ होता है। अथवा–

ककड़ी के बीजों की गिरी 4 भाग में दारूहल्दी और मुलैठी 1–1 भाग मिला महीन चूर्ण कर चावलों की यवागू के साथ पिलावें।

अथवा ककड़ी के बीजों का चूर्ण 1 से 2 तोला तक लेकर किंचित सेंधा नमक के साथ पीसकर कांजी मिला पिलाने से मूत्ररोध, मूत्राघात दूर होता है।

मूत्रविरेचनार्थ–ककड़ी के बीज 3 माशे और सेंधा नमक 1½ माशा दोनों को एकत्र खूब महीन पीस कर आधे सेर दूध और पानी में मिला लस्सी बना खड़े होकर एकदम पी जावें और घूमते रहें (बैठें या लेटें नहीं)। इस क्रिया से अन्दर रुका हुआ मूत्र अधिक प्रमाण में निकलेगा, मूत्राशय की उष्णता दूर होकर मूत्रकृच्छ मूत्ररोध, प्रमेह आदि विकार दूर होंगे। मूत्रावरोध जन्य उदावर्त में मूत्र खोलने के लिए यह उपयोगी है।

(2) अश्मरी (पथरी) पर– ककड़ी और खीरे के बीजों की सिल पर पिसी हुई लुगदी 3 तोले को पाषाण भेद, गोखरू, बरुना और ब्राह्मी समभाग कुल 2 तोले के अष्टमांश क्वाथ में मिला तथा उसमें शुद्ध शिलाजीत 6 माशे तक और गुड़ 2½ तोले मिला सेवन करने से पथरी अवश्य नष्ट होती है। अथवा–

ककड़ी के बीजों को कबूतर की विष्ठा के साथ पीस चावलों के धोवन में मिलाकर पिलावें।

(3) हिक्का (हिचकी) रोग पर– (अ) ताजी ककड़ी को सिल पर पीसकर लुगदी को वस्त्र में रखकर निचोड़ लें। जो स्वरस निकले उसमें मुलैठी चूर्ण, अपामार्ग के बीजों का चूर्ण, मोरपंखी की भस्म और भ्रमर या मधुमक्खी के छत्तों की भस्म समभाग 3–3 माशे (ककड़ी का स्वरस 10 तोला) तथा शहद 2½ तोले तक मिलाकर लेने से शीघ्र लाभ होता है।

(आ) वातपित्त ज्वर के उपद्रव रूप में हिक्का हो तो ककड़ी के बीजों की मिंगी 3 से 6 माशे तक स्त्री के दूध में पीसकर पिलावें।

(4) श्वेतप्रदर पर– ककड़ी के बीजों की मिंगी 1 तोले और श्वेत कमल पुष्प की पंखुड़ियाँ 1 तोला दोनों को खूब महीन पीस उसमें जीरा चूर्ण 2 माशे और मिश्री चूर्ण 6 माशे मिला सेवन करने से 7 दिन में पूर्ण लाभ होता है।

(5) गर्भिणी के उदरशूल पर– ककड़ी की जड़ एक तोला को 1 पाव दूध और 1 पाव जल के मिश्रण में कुचल कर मिला दें और फिर मन्दाग्नि पर पकावें। दुग्ध मात्र शेष रहने पर सुखोष्ण पिलाने से लाभ होता है।

(6) दाहयुक्त मूत्र की जलन पर– ककड़ी के बीज 1 तोला पीसकर उसमें 10 तोला जल और 1 तोला मिश्री मिला पिलावें।

(7) वृक्क शोथ (Nephritis) या कफोदर– के कारण सर्वांग में सूजन आ गई हो, उदरवृद्धि, मूत्राल्पता, अन्नद्वेष, कास आदि लक्षण हों तो अरण्य ककड़ी की जड़ या लता (ताजी हो या शुष्क) का अष्टमांश क्वाथ सिद्ध कर यथायोग्य प्रमाण में (1 से 2½ तोला तक) प्रातः सायं सेवन करावें तथा इसी क्वाथ को शरीर पर मर्दन करें। प्रायः तीन दिन में ही अवश्य लाभ होता है। किन्तु ध्यान रहे रोगी को किसी भी प्रकार के तेल का सेवन तो दूर रहा उसकी गन्ध भी नहीं आनी चाहिये। अन्यथा प्रयोग व्यर्थ जाता है और हानि होने की संभावना है।

(8) अश्मरी या पथरी पर– अरण्य ककड़ी की जड़ को बासी पानी में पीसकर तीन दिन तक सेवन कराने से पथरी अवश्य निकल जाती है। – योगरत्नाकर

ककर खिरुनी (Kakar Khiruni)

यह एक पुष्प वृक्ष का कोंकड़ देशीय कोंकणी या मरेठी नाम है। इसे संस्कृत में करवीरणी कहते हैं। ये वृक्ष ग्रीष्मकाल में फूलते हैं। फूल लाल रंग का होता है।

गुण धर्म–

यह कडुवा, गरम, चरपरा तथा कफ, वात, विष, आध्यमानवात, वमन, ऊर्ध्वश्वास और कृमिनाशक है।

–वैद्य शब्द सिन्धु

ककोड़ा (Momordica Dioica)

यह कर्कटी (Cucurbitaceae) वर्ग की वनौषधि है। आयुर्वेदानुसार इसकी गणना शाक वर्ग में की गई है। इसके सदृश ही एक अन्य बेलदार वनस्पति होती है, जिसमें फल नहीं लगते। वह ''बांझ ककोड़ा'' कहाती है। आयुर्वेद में इसकी गणना गुडूच्यादि वर्ग में की गई है। इसके (बाँझ ककोड़ा) गुण धर्म भिन्न होने से हमने भी इसका वर्णन आगे के भिन्न प्रकरण में किया है।

नर या बांझ ककोड़ा से भिन्न दर्शाने के लिये फल वाले ककोड़ा को 'ककोड़ी' भी कहते हैं। ये दोनों प्रायः एक ही स्थान में जंगलों में उगते हैं। किसी किसी जंगल में ये अत्यधिक प्रमाण में उगने से उस जंगल को ककोड़े वाला जंगल कहते हैं। बाँझ ककोड़ा में केवल एक प्रकार नर फूल लगता है तथा फल के स्थान में खाली एक कोष सा लगता है। कंकोड़ी में नरफूल और मादा फूल दोनों लगते हैं। तथा फल भी खूब लगते हैं। ककोड़ी[1] की किसी किसी बेल में कडुवे फल भी लगते हैं। मीठे ककोड़े की साग बहुत सुस्वादु और पथ्यकर होती है। चरकाचार्य जी ने शाकवर्ग में ज्वर रोगी के लिए इसे पथ्यकर दर्शाया है। औषधि प्रयोगों में मीठे और कडुवे दोनों ककोड़े लिये जाते हैं। सुश्रुत में शिरो रोग प्रकरण के नस्य विधान में जिस कर्कोटक का नाम लिखा है, वह कडुवी तोरई या कडुवा फल वाला उक्त ककोड़ा हो सकता है, मीठा ककोड़ा नहीं।

चरक संहिता के 'धामार्गव कल्प' प्रकरण में धामार्गव के पर्यायवाची शब्दों में 'कर्कोटकी' शब्द आया है।[2] अतः भ्रमवश किसी किसी ने इस ककोड़ा को ही धामार्गव मान लिया है। किन्तु ध्यान रहे, जिस धामार्गव का कल्प (या कल्प विधि) वहाँ लिखी है वह ककोड़ा नहीं है, प्रत्युत् कड़वी तोरई है। आगे कडुवी तोरई का प्रकरण देखिये।

करेलाधार (मरेला) ककोड़ा
Momordica Dioica Roxb

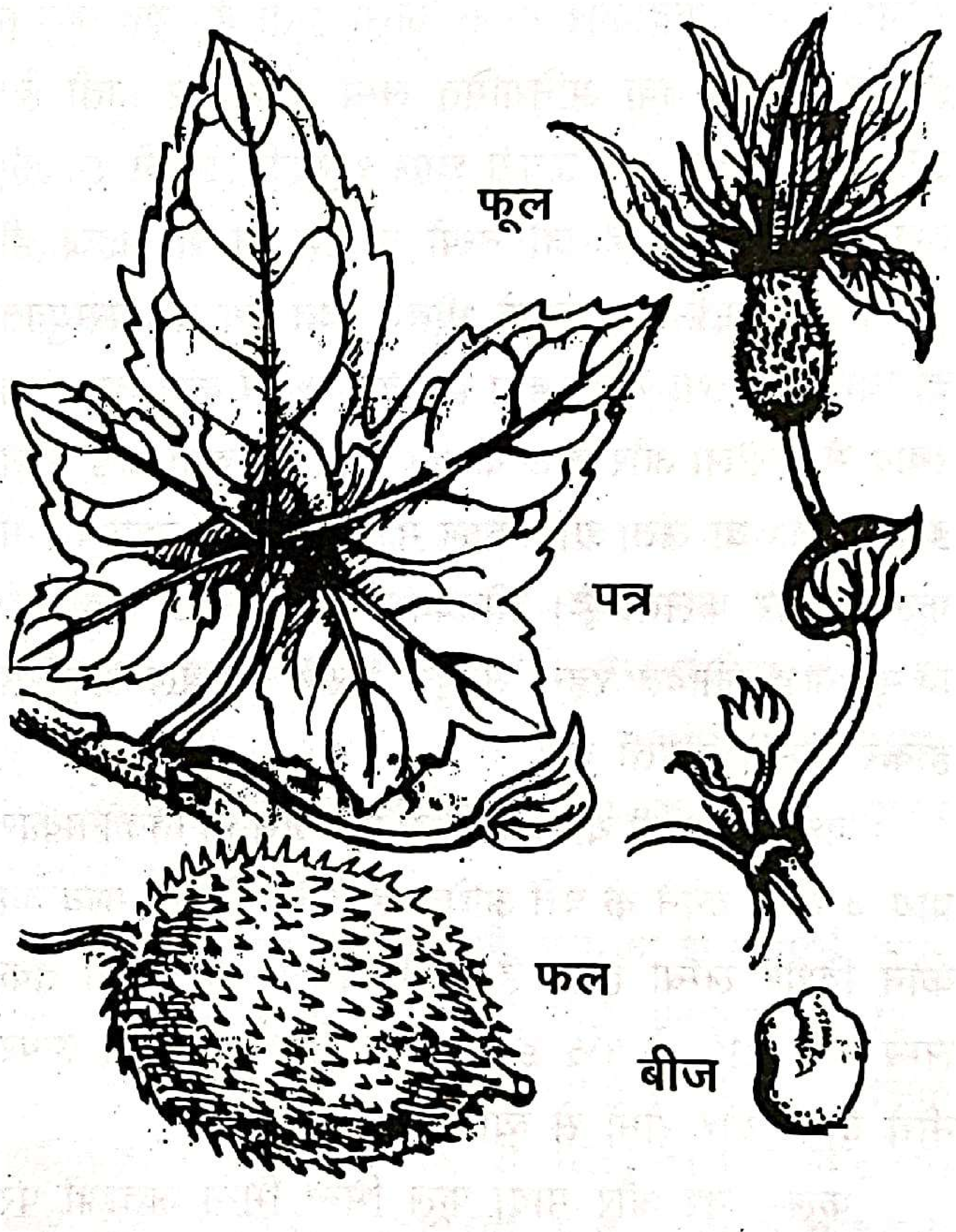

'वन काकड़ा' (या वन ककरी) नाम की एक भिन्न वनौषधि होती है। 'भुइंखेखसा' नाम की एक अलग वनौषधि है, यथास्थान उसका वर्णन किया गया है।

नाम–

संस्कृत– कर्कोटक, स्वादुफल, कंटफला।
हिन्दी– ककोड़ा, खेखसा, ककरौला, वन करेला, चठैल।
मराठी–कर्टोली, काटोल, कांटली, फाकली।
गुर्जर–कंटोली, कंटोल। बंगाली– कांकरोल।
लेटिन–मोमोर्डिका डायोइका।

---

1. कोई कोई कहते हैं कि बीज से रोपण की हुई ककोड़ी 4, 5 या 6 वर्ष तक फल नहीं देती, केवल फूलती है, तब तक बांझ ककोड़ा कहलाती है। वही पुरानी होने पर फलने भी लगती है तब उसका बांझपन निकल जाता है। उसी में किसी का फल मीठा और किसी का कड़ुवा होता है। किन्तु यह कथन हमें निराधार मालूम देता है। कारण जंगलों में इसे कोई भी रोपण करने नहीं जाता तथा इनके बीज तो झड़ते भी हैं वे पशु पक्षियों से बचते नहीं। यदि कोई बीज अंकुरित भी हो जाय तो यदि वह मीठे ककोड़े का हो तो उससे मीठे ही फल वाली बेल निकलती है। वह 4 से 6 वर्षों तक फलती नहीं, ऐसा हमारे देखने में तो नहीं आया। नहीं कह सकते कि प्रकृति वैचित्र्य के कारण ऐसा भी कहीं कहीं होता हो।

2. कर्कोटकी कटुफला महाजालिनिरेवच।
धामार्गवस्य पर्याय राजकोशातकी तथा।। –चरक

उत्पत्ति स्थान–

यह बंगाल, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, बम्बई, गुजराथ, कनाड़ा आदि दक्षिण भारत तथा कूचबिहार, रंगपुर आदि कई स्थानों की रेतीली, जंगली एवं पहाड़ी भूमि में प्रचुरता से पैदा होता है।

विवरण–

इसकी बेल चैत्र मास के अन्त से लेकर वैशाख, जेठ तक ग्रीष्मकाल में ही अंकुरित होकर ऊपर वृक्षों पर या झाड़ी और खेत की बाड़ी पर फैलने लग जाती है। इसकी बहुवर्षायु जड़ कंद्राकार गाजर जैसी होती है। यह जड़ 6 इंच से 1 फुट तक अनियमित लम्ब गोलाकार होती है। इस जड़ या कंद की ऊपरी छाल खुरदरी, खाकी रंग की तथा पतली होती है जो नखों से खुरचने से सहज ही अलग हो जाती है। इसके भीतर श्वेत रंग का रसयुक्त दानेदार सत्व सा भरा रहता है। यह गंध में कुछ उग्र तथा स्वाद में कसैला और कुछ कड़ुवा होता है। इसी जड़ में से इसकी बेल या लता ग्रीष्मकाल में निकल कर वर्षाकाल में फूलती और फलती है। शीतकाल में यह सूख जाती है, किन्तु जड़ जीवित रहने से पुनः दूसरे वर्ष बेल अंकुरित होकर फैलने लगती है।

पत्ते–देवदाली या ककड़ी के पत्ते जैसे ही तिकोनाकार प्रायः 4 या 5 कोने के पत्ते अधिक होते हैं। जिसमें मध्य का कोन विशेष लम्बा होता है। पत्ते प्रायः 2 से 4 इंच तक लम्बे तथा 1½ से 3½ इंच तक चौड़े होते हैं। ये ऊपर नीचे दोनों ओर रोमों से व्याप्त रहते हैं।

फूल– नर और मादा फूल भिन्न भिन्न लताओं पर पीले वर्ण के ककड़ी के फूल जैसे, किन्तु उससे कुछ छोटे होते हैं। ये प्रायः सायंकाल में खिलते हैं।

फल– देवदाली या धतूरे के फल जैसे, सूक्ष्म हरे, कोमल कांटों से युक्त, गोल कुछ लम्बाकार होते हैं। कच्ची दशा में ये बाहर से हरे और अन्दर श्वेत होते हैं। किन्तु पकने पर ये बाहर और भीतर पीताभरक्त वर्ण के हो जाते हैं। इनकी साग या तरकारी प्रायः कच्ची दशा में ही बनाई जाती है। फलों में बीज प्रायः परबल के बीज जैसे होते हैं जो पकने पर कुछ काले रंग के हो जाते हैं। इसमें फल प्रायः आषाढ़ मास में लगते हैं तथा भाद्रपद मास में ये पक जाते हैं।

गुणधर्म–

आयुर्वेदीय मतानुसार–

ककोड़ा– रस में मधुर, लघु, विपाक में– कटुरस युक्त, अग्निदीपक, मल को हरने वाला तथा कुष्ठ, हृल्लास (जी मिचलाना), अरुचि, श्वास, कास, ज्वर, गुल्म, शूल, त्रिदोष, प्रमेह, किलास, लालास्राव और हृदय की पीड़ानाशक है। गुणों में यह करेला के समान ही है।[1]

इसका पत्ता रुचिकारक, वीर्यवर्धक, त्रिदोषनाशक तथा कृमि, ज्वर, क्षय, श्वास, कास, हिचकी और अर्शनाशक है। इसके कोमल पत्तों की भाजी बनाकर देते हैं। तथा क्वाथ सिद्ध कर ज्वर और क्षय की दशा में थोड़ा शहद मिलाकर सेवन कराते हैं।

इसका कंद मस्तिष्क विकार, रक्तार्श, ग्रन्थि, मधुमेह आदि नाशक है। मस्तिष्क के विकारों पर इसके कन्द का चूर्ण शहद के साथ सेवन कराया जाता है। कंद को शहद के साथ घिसकर वातज मस्तकशूल पर लेप करने से लाभ होता है। कंद के चूर्ण को शक्कर के साथ सेवन से रक्तार्श में लाभ होता है।

यूनानी मतानुसार–

यह समशीतोष्ण है। कफ, रक्तपित्त, अरुचि, खाँसी जीर्णज्वर, अर्श, फेफड़े तथा गुर्दे, पसली, कान आदि शारीरिक पीड़ाओं को दूर करता है। मुंहासों (यौवन पिड़िकाओं) को नष्ट करता है।

इसकी जड़ का लेप बालों की जड़ों को दृढ़ करता है। जड़ को गोघृत में तल कर नाक में टपकाने से आधा सिर का दर्द शीघ्र दूर होता है।

हानिकारक– यह पेट में अफरा पैदा करता है और देर से पचता है। इसके दर्पघ्न गरम मसाले और अदरख हैं।

आधुनिक मतानुसार–

इसके फलों की साग भोजन के साथ बहुत पथ्यकर और हितकारी होती है। इसके श्लेष्मल, मसृण कंद (mucilaginous tubers) बाँझककोड़ा के कंदों की अपेक्षा आकार में कुछ बड़े होते हैं। इन कंदों का अवलेह (electuary) या शर्बत रूप में एक से दो ड्राप की मात्रा में सेवन रक्तार्श तथा आँत्र विकारों में लाभदायक होता है। यह दो

1. 'कर्कोटकं फलं ज्ञेयं कारवेल्लक वद् गुणैः ।।'
–राजनिघण्टु

या दो से अधिक मात्रा में दिन में दो बार सेवन करने से श्वास कास हर (expectorant) है। कंद के चूर्ण का त्वचा पर मर्दन त्वचा को मुलायम करता है, और स्वेद को रोकता है।

इसके बीजों में हरितवर्ण का तैल 43.7 प्रतिशत पाया जाता है, तथा इसमें रूक्ष गुणों (Siccative properties) की प्रधानता है[1] ऊपर का छिलका दूरकर, ये बीज भून लिये जाते हैं, तथा अकेले ही या अन्य खाद्य द्रव्यों के साथ खाये जाते हैं। ये कफ विकार और छाती के दर्द पर लाभकारी माने जाते हैं। बंगाल प्रदेश में प्रसूति के पश्चात् ही तुरन्त तथा बाद में भी प्रतिदिन कुछ दिनों तक स्त्री को जो झाल नामक एक प्रकार का उष्ण प्रधान क्वाथ या यूष तपाये हुए मक्खन को मिला कर पिलाया जाता है। उस झाल में इन बीजों के चूर्ण का मिश्रण प्रधान रूप से किया जाता है।

इसके बीज और पत्ते मृदु रेचनीय (Aperient) तथा यकृत व प्लीहा के अवरोध दशा में सेवनीय माने जाते हैं। विकृत व्रणों पर तथा कटिग्रह (Lumbago) या कमर की जकड़न, गर्भाशय का नीचे की ओर हटना, अस्थिभंग और अस्थि-स्खलन की दशा में इसका वाह्य प्रयोग हितकारी माना जाता है। कहा जाता है, कि इसकी जड़ों का प्लास्टर या प्रलेप बालों को बढ़ाता तथा बालों के झड़ने को रोकता है। —डाक्टर कर्णी (इ0 मे0 मेडिका)

कक्रोल या काक्रोल नाम से इसके बीज बाजारों में बिकते हैं, तथा प्रसूति अवस्था में इनका यूष (पेय) बना कर दिया जाता है। —डा0 देशाई (औ0 संग्रह)

रोगानुसार प्रयोग–

(1) कास, श्वास पर– इनकी जड़ों को साफ कर छोटे-छोटे टुकड़े बना एक हाँड़ी में भर ऊपर से अच्छी तरह कपड़ मिट्टी कर 10 सेर उपलों की आँच में फूंक दें। पश्चात् भस्म को पीसकर शीशी में भर रखें।

मात्रा– 2 से 3 रत्ती तक शहद और अदरख के रस में देने से भयंकर खांसी और श्वास में तत्काल लाभ प्रतीत होता है। (गुप्त सिद्ध प्रयोगांक–धन्वन्तरि)

(2) अश्मरी (पथरी) पर– इसकी जड़ 1 से 3 तोले तक महीन पीस छान कर जल या दूध के साथ 10 दिन तक सेवन कराने से शर्करा तथा वृक्क और मूत्रेन्द्रिय की पथरी नष्ट होकर निकल जाती है।

(3) रक्तार्श पर– इसके कंद को छाया शुष्क कर चूर्ण बना रक्खें। मात्रा– 1½ से 6 माशे तक शक्कर के साथ सेवन कराने से खूनी बवासीर और रक्त मूलक व्याधियों में लाभ होता है।

(4) मधुमेह पर– कंद के चूर्ण की मात्रा 1½ से 6 माशे तक तथा उसमें बंगभस्म 1 या 2 रत्ती तक मिला शहद के साथ सेवन करावें।

(5) ग्रन्थि पर– इसके कन्द के साथ इंद्रायण की जड़ को शीत जल में घिसकर बार-बार प्रलेप करने से लाभ होता है।

(6) प्लीहा वृद्धि पर–इसके कन्द को रविवार के दिन लाकर रोगी के हाथों से उसे कूल्हे पर बंधवा देवें। जैसे-जैसे वह कन्द सूखेगा तैसे तैसे प्लीहा भी नष्ट होगी। (वनौषधि गुणादर्श)

उक्त प्रयोगार्थ बाँझ ककोड़ा का कन्द विशेष लाभकारी है।

(7) सिर दर्द पर– इसकी जड़ को कालीमिर्च, लाल चन्दन और नारियल के तैल के साथ पीसकर लगावें।

(8) अभ्रकद्रुति– ककोड़े के फलों का चूर्ण (इसके लिये बड़ा ककोड़ा, काकरोल या गोलकाकरा के फल लेने होंगे) और मित्रपंचक (मधु, घृत, गुंजा, सुहागा व गूगल) 1-1 भाग लेकर दोनों एकत्र मिला उसमें समभाग धान्याभ्रक डालकर एक दिन नीबू के रस (या काँजी) में खरल कर मूषा में रखकर आग पर धीरे-धीरे फूंकने से अभ्रक अवश्य प्रवाही हो जाता है। (र0 रा0 सुन्दर)

कर्कोटकी सत्व–इसके कन्द को छील कर कूट लिया जावे तथा पानी में घोलकर छान लें। छने हुए पानी के तल भाग में नितारने के पश्चात गुलाबी झांई वाला श्वेत पदार्थ प्राप्त होता है। यही सत्व है। यह सत्व अमीवा वाले अतिसार और प्रतिश्याय में विशेष लाभदायक है। वातश्लेष्मजन्य रोगी पर अन्य औषधियों के साथ इसे सफलता पूर्वक दिया जा सकता है।

---

1. सर्व साधारण ककोड़ों के बीजों के विषय में यह नहीं है। काकरोल या गोल काकरा नामक एक इसी की जाति का ककोड़ा होता है, जो खासकर बंगाल और कनाड़ा में अधिक होता है, उसे भी लेटिन नाम Muricia Cochinchinensis दिया गया है। उसके बीजों के विषय की चर्चा यहां की गई है। ये बीज आकार प्रकार में बड़े तथा करेला के बीजों जैसे होते हैं। ये फल के पकने पर लाल रंग के हो जाते हैं। —लेखक

ककोड़ा-बांझ (Momordica Cochinchinensis)

यह आर्य निघण्टु के अनुसार गुडूच्यादिवर्ग की, तथा पाश्चात्यों के अनुसार कर्कटी (Cucurbitacea) वर्ग की ही वनौषधि है।

इसकी बेल में फल नहीं लगता, अतः यह बन्ध्या या बाँझ ककोड़ा कहा जाता है। इसके विषय में विशेष वक्तव्य हम ककोड़ा के प्रकरण में दे चुके हैं।

कोई कोई इसके भी पुरुष और स्त्री जाति के दोनों भेद मानते हैं और कहते हैं कि पुरुष जाति की बेल पर केवल फूल आते हैं फल नहीं और स्त्री जाति की बेल पर फूल और फल दोनों आते हैं। फल देखने में ककोड़ा के जैसा ही होता है, किन्तु वह कडुवा होता है इत्यादि। इस कडुवे फल वाली बेल को बाँझ ककोड़ा कहना हमें युक्तसंगत नहीं जंचता। अतः हम इसे ककोड़ा का ही एक भेद मानते हैं।

यह सर्पादि के जंगम विषों का नाशक होने से नागारि, सर्पदर्पहरी, सर्पदमनी आदि नाम इसे दिये गये हैं। यह संखिया आदि स्थावर विषों को भी नष्ट करता है, अतः 'विषद्वयनाशिनी' भी कहा जाता है। यह प्रायः कई रोगों पर उत्तम कार्य करता है। अतः 'सर्वोषधि' तथा इसके कन्द ककोड़ी के कन्द की अपेक्षा सुचिक्कन एवं सुडौल होते हैं; अतः 'सुकन्दा' आदि कई प्रभाव गुण सूचक नामों से पुकारा जाता है।

बाजारों में इसके कन्दों के साथ अन्य कन्दों का मिश्रण कर देते हैं। अतः अच्छी तरह जाँच कर इसे लेना आवश्यक है। इन कन्दों को "कटूल" भी कहते हैं।

नाम–

सं०–बन्ध्या कर्कोटकी, विषहंत्री, योगेश्वरी।

हिन्दी–बांझ ककोड़ा, बांझ खेखसा, अफल ककोड़ा, बन ककोड़ा।

म०– बांझ कटोली (काटोल)

गु०–बांझ कटोलो, फलवगरना कंटोला

बं०–तित्कांकरोल। पंजाबी–बांझखाख

लेटिन– मोमोर्डिका कोचिनचिनेसिस, मोमोडिंगा डायोइकामेल (Momordica Dioicamale)

उत्पत्ति स्थान–

भारतवर्ष के प्रायः सब प्रान्तों के जंगल–झाड़ियों में जहाँ ककोड़ा होता है, वहीं यह भी पाया जाता है। बंगाल और दक्षिण भारत के जंगलों में यह बहुतायत से होता है।

विवरण–

इसकी बेल, पत्र, फल आदि सब ककोड़ा के समान ही होते हैं। इसका कन्द स्वाद में कसैला और कडुवा होता है। औषधि में प्रायः इसका कन्द ही लिया जाता है। जो वामक और रेचक होता है तथा इसी से यह सर्पादि के विषों को दूर करता है। यह कंद ककोड़ी के कंद की अपेक्षा कम लुआबदार होता है। इसमें फल के स्थान में जो एक कोष सा होता है, वह भी औषधि कार्य में लिया जाता है। कन्द में रेचक गुण की अपेक्षा वामक गुण विशेष रहता है।

गुणधर्म–

आयुर्वेदीय मतानुसार–

यह कडुवा, विपाक में चरपरा, वीर्य में उष्ण व तीक्ष्ण रसायन, शोधन, हल्का, तथा कफ, स्थावर जंगम विष, विसर्प, मूत्रकृच्छ, अश्मरी, कामला, नेत्ररोग, सिरोरोग, उपदंश, सन्निपात, कास, श्वास, शूल, अपस्मार, रुधिर विकार, प्लीहावृद्धि, मृतवत्सा (स्त्री रोग) और खाज खुजली आदि नाशक है। यह व्रण शोधक और पारे को बाँधने वाला है। पीठ व कमर के दर्द को, पक्षाघात को दूर करता है, वातनाशक है।

इसके कन्द के चूर्ण को सौंठ के चूर्ण के साथ मिला शरीर पर मर्दन करने से शरीर शौथिल्य तथा शीत बाधा दूर होकर शरीर में काफी गरमी आती है। इस चूर्ण को प्रसूता स्त्री के सिर पर मर्दन कर तथा इसके साथ आमला का चूर्ण मिला जल में पका कर उस जल से स्नान कराने से शीत बाधा नहीं हो पाती।

कन्द को पीसकर उसमें घृत मिला पिलाने से विष बाधा में, कन्द को मधु के साथ घिसकर आंखों में आंजने, कन्द को पानी में घोट छानकर पिलाने व प्रलेप करने से सांप, बिच्छू, चूहा, लूता (मकड़ी) आदि के विषों में, कन्द को जल के साथ पकाकर, कल्क बना गाढ़ा गाढ़ा प्रलेप करने से स्तन रोग में, कन्द को घृत में पका तथा उसमें चीनी मिला नस्य देने से अपस्मार में, कन्द को मधु के साथ में सेवन करने से श्वेत प्रदर व मूत्रकृच्छ में, कन्द को स्त्री दुग्ध में घिसकर नस्य देने से श्लीपद रोग में, और कन्द को बकरे के मूत्र में भिगो तथा शुष्क कर कांजी में पीस नस्य देने से विषजन्य मूर्छा में लाभ होता है। ज्वर को उतारने के लिये कन्द को घिसकर आंखों में आंजते हैं। व्रण को पकाने व फोडने के लिए कन्द को गौमूत्र में घिसकर लेप करते हैं।

पत्र– इसके पत्तों का रस कान में टपकाने से कर्ण शूल मिटता है। पत्तों को पीसकर कृमियुक्त व्रणों पर बाँधने से लाभ होता है। इसके कोषाकार सूखे फल के चूर्ण की नस्य देने से छींकें बहुत आती है, तथा नाक से कफ स्राव होकर सिर हल्का हो जाता है।

इसके पंचांग को तेल में जला कर तथा खरल कर व्रणों पर लगाने से विशेष लाभ होता है।

यूनानी मतानुसार–

यह उष्ण है। इसके कन्द का मुरब्बा पलकों के रोग को दूर करता है। मात्रा–7½ माशे या कुछ अधिक दिन में दो बार देते हैं। यह मुरब्बा आँत्र के कई रोगों पर भी लाभकारी है। सिर के रोगों की यह एक उत्तम औषधि है।

छिपकली के मूत्र से जो सूजन हो जाती है, उसे दूर करने के लिये इसकी जड़ का रस दिया जाता है। इसकी जड़ 1 तोला तक शहद और चीनी के साथ सेवन करने से पथरी गल जाती है।

नोट– शेष सब यूनानी मत आयुर्वेदानुसार ही हैं। यह वनौषधि यूनानी आदि देश में नहीं होती। अतः इसके विषय में उनका कोई खास स्वतन्त्र मत नहीं है।

आधुनिक मतानुसार–

इसके कन्द सलगम जैसे, किन्तु उनसे कुछ लम्बे, रंग में पीताभ श्वेत होते हैं। उन पर कंकणाकृति चिन्ह होता है। स्वाद में कसैले होते हैं। इसकी राख में अपस्कान्ति (मैंगनीज) पायी जाती है। इसमें रेचक धर्म नहीं है। मात्रा– अधिक होने से यह वामक है। इसमें थोड़ा रक्तसाँग्राहिक गुण है। मात्रा–1 से 5 ड्राम, शक्कर के साथ।

रक्तार्श में कन्द का चूर्ण देते हैं। सिर दर्द पर इसके पत्तों के स्वरस में काली मिर्च, लाल चन्दन और नारियल का रस मिलाकर मर्दन करते हैं। कन्द के चूर्ण के साथ बंगभस्म मधुमेह में देते हैं। –डा0 देसाई (औ0 संग्रह)

इसकी जड़ को भूनकर रक्तार्श के रक्तश्राव को बन्द करने के लिये, तथा आंतों के विकारों को दूर करने के लिये देते हैं। छोटा नागपुर की मुंड़ा जाति के लोग इसकी जड़ को मूत्राशय की व्याधियों में काम में लेते हैं। इसकी जड़ को जल के साथ पीसकर शरीर पर मालिश करने से मूर्छा युक्त ज्वर की दशा में अवश्य सुधार होता है, रोगी को शांति प्राप्त होती है। इसकी जड़ का उपयोग सर्पदंश जन्य क्षत में किया जाता है।

–डा0 सन्याल (व्हि. ड्रग्ज आफ इण्डिया)

इसका ज्यादा व्यवहार करने से मेदा की ताकत क्षीण हो जाती है और रोगी कमजोर होना शुरू हो जाता है। इसके पत्तों को खूव महीन पीस उसका रस 1 पाव निकाल कर अच्छी प्रकार छान के भाप द्वारा शोषित कर लेवें। इस सत का व्यवहार ज्वर, मृगी, हूपिंग कफ, विसर्प पर किया जाता है। मात्रा– 4 रत्ती से दो माशे तक है। इसकी जड़ को अच्छी प्रकार साफ कर कूट कर चूर्ण बनाया जाता है, जो उपरोक्त रोगों को हरण करता है। चूर्ण को पानी में खरल कर मशीन द्वारा 4 रत्ती प्रमाण के टेवलेट बनाये जाते हैं जो श्वास रोग को शीघ्र ही हरण करते हैं। यह श्लीपद (हाथी पाँव) रोग की दवा है। इसका इंजेक्शन बनाकर देनी तथा खिलाना और तेल की मालिश करनी चाहिये। अफरा रोग में इसके चूर्ण को गरम पानी के साथ रात को शयन के समय लेना चाहिये। गर्भावस्था के आक्षेप में इसका स्वरस देवें। हूपिंग कफ (कुकुरखाँसी) में नित्य प्रति इसका स्वरस पिलाकर 1 तोला मिश्री खिलाकर देने से लाभ होता है। जीभ का लकवा होने पर इसे सेवन करावें और तैल बनाकर मालिश करें।

शिशुओं (छोटे बालकों) के वमन रोग में यह उत्तम औषधि है। दूध पीते ही जोर से वमन हो, और वमन के बाद बालक निस्तेज होकर सो जाया करता हो। कभी दूध पीने के कुछ देर बाद दूध दही की तरह थक्का थक्का होकर कै होती हो, तथा इसके साथ हरा रंग का लसलसा मल निकलता हो, और आक्षेप (Convulsion) होते हों तो ऐसी अवस्था में इसकी 1 रत्ती मात्रा पानी या दूध में मिलाकर देवें या उपर्युक्त कोई दवा मात्रानुसार देवें। तुरन्त लाभ होता है।

अत्यन्त ज्वर, त्वचा, सूखी, नाड़ी पूर्ण और जल्द चलती हो, बहुत बैचेनी और प्यास लगती हो, ऐसी अवस्था में इसका स्वरस या क्वाथ मिश्री मिलाकर पिलाना लाभदायक है।

ब्राइट पीड़ा (Brights disease) में मूत्र उत्पत्ति न होने पर भी इससे बहुत उपकार हो जाता है। पत्ता पीसकर पानी में मिला पिलावें, और गर्म आहार बन्द कर दें।

अतिशय सांघातिक निमोनियाँ रोग में जब छाती तरल कफ से भर जाती है और दुर्बलता होने से रोगी कफ को निकाल नहीं सकता, कफ में दुर्गन्ध आती है, रोगी ठंडी हवा लेना पसन्द करता है, उस वक्त पर इसे पिलाने से सब तकलीफ नाश हो जाती है। कफ निकलने लगता है। रोगी स्वास्थ्य लाभ कर लेता है।

मलेरिया ज्वर और सविराम ज्वर में इसका प्रभाव अति उत्तम होता है। इसका चूर्ण गर्म पानी से देवें या

ताजी जड़ को पानी में पीसकर नित्य पिलावें।

स्वरभंग में इससे बहुत ज्यादा प्रभाव होता है। वह स्वरभंग जो गीली हवा या संध्या समय बढ़ता है उसमें इसका रस चूसना ही फायदा देता है। आहार पुष्टिकर होना चाहिये।

शराब पीने से जो अजीर्ण दोष पैदा हो जाता है, उस अजीर्ण (Dygpepsia) में इसके पत्ते पानी में पीस कर पिलाना चाहिये।

उदरशूल में इसको एक पाव पानी के साथ 10 नग काली मिर्च मिलाकर पिलावें, शूल तत्काल नष्ट हो जाता है।

मुहांसा में नित्य दूध में या नींबू के रस के साथ घिस कर लेप करने से मुहांसा और छीप दोनों दूर होते हैं।

उपदंश रोग में इसका सेवन करना, तथा घाव पर पानी में घिस कर चन्दन की तरह लेप करना और धूनी देनी चाहिये।

मसूढ़े की सूजन पर इसे चबाना, अथवा इसके चूर्ण का मंजन करना अति उत्तम लाभ देता है।

इसकी जड़ को मुख में चबाते रहने और थूकते रहने से मुखपाक शीघ्र ही दूर हो जाता है।

प्रत्येक प्रकार के फोड़ों पर इसके पत्तों की लुगदी बनाकर बांधने से लाभ होता है। इत्यादि।

–प्रो0 रामकृष्ण वर्मा (अभिनव बूटी दर्पण)

हस्तमैथुन की कुटेव से नपुंसक स्थिति में पड़े हुये एक बीमार को किसी वैद्य ने अधिक मात्रा में संखिया खिला दिया जिससे उसका शरीर जलने लगा और पक्षाघात की तरह स्थिति हो गई। उसके खून का रंग काजल की तरह काला हो गया जीभ और गले में इतनी जड़ता पैदा हो गई, कि वह कुछ भी खा पी नहीं सकता था। ऐसी दशा में उस रोगी को डोली में डालकर हमारे पास लाया गया। हमने कुछ विचार करके बाँझ ककोड़े की जड़, बेग (पाताल गरुड़ी) की जड़, सिरस की अंतर छाल, और गूलर के पत्ते समान भाग लेकर प्रातः सायं 4 तोले की मात्रा में क्वाथ बनाकर देना प्रारम्भ किया। धीरे धीरे संखिया का विष नष्ट होकर उसका शरीर पूर्ववत् हो गया। पश्चात् योग्य अनुपान के साथ सुवर्ण भस्म के सेवन कराने से उसकी नपुंसकता भी दूर हो गई।

–वैद्यशास्त्री शामलदास गोर (जंगलनी जड़ी बूटी)

सिद्ध साधित प्रयोग–

(1) बंध्याकर्कटासव– इसके कन्द का चूर्ण 2½ तोला में 1 पाव (20 तोला) रेक्टीफाइड स्प्रिट और 10 तोला शुद्ध जल (वाष्प जल) मिला, शीशी में अच्छी तरह डाट बन्द कर रक्खें। प्रतिदिन 2-3 बार हिला दिया करें। 15 दिन बाद छानकर उसमें 15 तोले तक और वाष्प जल मिला बोतल में बन्द कर रक्खें।

मात्रा– 10 बूंद से 60 बूंद या इसका चौगुना दे सकते हैं। ज्वर, अपस्मार, विसर्प, कास श्वास, शूल आदि पर लाभकारी है। अथवा–

इसकी ताजी जड़ों का स्वरस निकाल कर, जितना स्वरस हो उसका चौथाई भाग उसमें रेक्टिफाइड स्प्रिट मिला शीशी में डाट अच्छी तरह बन्द कर रक्खें, 7 दिन पश्चात् छानकर दूसरी शीशी में भर रक्खें।

मात्रा– 4 बूंद से 30 तक, उक्त सब रोगों पर दे सकते हैं।

(2) शर्बत– इसके कन्द का चूर्ण 5 तोले में 1 सेर जल मिला पकावें, चतुर्थांश जल शेष रहने पर छानकर उसमें आध सेर तक मिश्री या शुद्ध शर्करा मिला पुनः आग पर पकावें। शर्बत की चासनी आ जाने पर बोतल में भर रक्खें।

मात्रा– 6 माशे से 2½ तोले तक सेवन करने से कास श्वास आदि कफ जन्य विकारों पर उत्तम लाभ होता है।

(3) बन्धाकर्कोटागद– इसकी जड़ 2 भाग और धतूरे की जड़ 1 भाग दोनों को अच्छी तरह सुखाकर चूर्ण करें। फिर इस चूर्ण में इन्हीं दोनों की जड़ों के स्वरस की 7 भावनायें देकर छोटे बेर जैसी गोलियां बना रक्खें।

सर्पदंश या बिच्छू के दंश पर गोली को पानी में घिसकर दंश स्थान पर लगावें, तथा सर्पदंश पर 1-1 गोली 1-1 घण्टे से चावल के दो–दो तोले धोवन के साथ पीसकर पिलावें। लाभ होता है।

रोगानुसार प्रयोग–

(1) विषों पर– इसके कन्द को 1½ तोले की मात्रा में पानी के साथ पीसकर पिलाने से वमन द्वारा हर प्रकार का स्थावर और जंगम विष नष्ट होता है।

सर्पदंश पर–इसके कन्द को घिस कर प्रलेप करें। तथा जल के साथ उक्त मात्रा में पिलावें, तथा कंद को बकरे के मूत्र की भावना देकर और काँजी में पीसकर नस्य बार बार देते रहें।

अथवा– उक्त 'बंध्याकर्कोटागद' का सेवन बहुत उत्तम लाभकारी है।

छिपकली के विष पर–कन्द को उचित मात्रा में जल के साथ घिसकर 7 दिन तक पिलावें।

संखिया के विष पर– इसे पानी में पीसकर जब तक वमन होती रहे तब तक पिलावें। वमन के बन्द हो जाने पर घृत को दूध में मिलाकर पिलावें।

सर्प विष पर इसकी जड़ 5 माशे और काली मिर्च 2½ दाने दोनों को पानी के साथ सिल पर महीन पीस थोड़े जल में घोलकर पिला देने से विष सर्वथा निर्मूल हो जाता है। यदि 15 मिनट में विष विकार पूर्णतया नष्ट न हो जाय, तो इसी प्रकार पुनः दूसरी मात्रा देने पर रोगी अवश्य चैतन्य हो जाता है।

जिसे अत्यन्त विषैले साँप ने काटा हो और वह औषधोपचार से अच्छा हो जाय, किन्तु लेष मात्र भी विष का दोष शेष रहने पर आगे थोड़ा भी व्यतिक्रम होने से, जैसे आग के सामने बैठने, धूप में मार्ग चलने और गरम चीजों के खाने पीने से गरमी के बढ़ जाने के कारण रोगी घबराहट से व्याकुल हो उठता है। ऐसी अवस्था में मृदु विरेचन द्वारा मलावरोध दूर करके केले की जड़ 1 तोला और काली मिर्च 5 दाने सिल पर महीन पीस, उसमें मिश्री 2 तोले और गोदुग्ध एक पाव मिला घोल छान कर प्रातः पिलावें। इसी प्रकार प्रतिदिन एक बार 40 दिन तक सेवन करने से सर्प का शेष विष निर्मूल होकर शान्ति प्राप्त होती है। ध्यान रहे सर्पदंशित रोगी को शीतल जल से स्नान कराना और टहलना हितकारी है। विष मुक्त होने के पश्चात भी कम से कम 12 घण्टे रोगी को सोने नहीं देना चाहिये। क्षुधा लगने पर प्रथम आधा पेट घृत मिश्री गौदुग्ध में मिला पिलाना श्रेष्ठ है।

—वैद्यराज महावीर प्रसाद जी मालवीय "वीर"

सर्पदंश पर इसके कन्द को चावलों के धोवन के साथ पकाकर पिलाने तथा उसको चुपड़ने से लाभ होता है। अथवा कन्द के कल्क में घृत मिला कर पिलाते हैं।

—वनस्पति शास्त्र[1]

(2) खाज, दाद, व्रण आदि पर– इसके छाया शुष्क पत्तों के चूर्ण 1 भाग में व्हेसलीन 10 भाग, अच्छी तरह खरल कर शीशी में भर रक्खें। इसे खाज, दाद, उकौत व्रण आदि पर लगावें। अथवा–

इसके पत्र रस में चौगुना तेल मिला पकावें, तेल मात्र शेष रहने पर लगाया करें। अथवा–

जो खुजली सायंकाल के समय या ठंड के समय अधिक बढ़ती हो,उस पर इसके कन्द को पीसकर थोड़ा तेल मिला उबटन की तरह मालिश कर और गर्म जल से स्नान करें।

उकौत पर– इसके कन्द के कल्क में थोड़ा तूतिया मिला लेप करने से लाभ होता है। —बूटी दर्पण

(3) प्लीहा वृद्धि पर– (अ) इसकी जड़ 2 माशे और काली मिर्च 5 दाने, दोनों को एकत्र कूट पीसकर दो तोले शहद के साथ प्रतिदिन सेवन करने से 11 दिन में तिल्ली बिलकुल नष्ट हो जाती है। इसी प्रयोग से रक्तविकार भी दूर होता है। —पंडित भागीरथ स्वामी

(आ) ककोड़ा के प्रकरण में नं0 6 का तांत्रिक योग देखिये।

(4) स्थौल्य या मेद रोग पर– इसके कन्द के रस में ताम्र भस्म और हरताल भस्म समभाग तीन दिन तक खूब मर्दन कर शुष्क कर रक्खें। इसकी मात्रा 1 से 2 रत्ती तक शहद के साथ सेवन करने और क्षार जल पान सेवन करने से लाभ होता है। (वसवराजीय)

(5) शूल रोग पर– इसके कन्द के साथ कलिहारी की जड़ या कन्द 1–1 भाग लेकर उसमें दो गुना शंख का चूर्ण मिला 3 दिन तक जंवीरी नींबू के रस में खरल कर शराब सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूंक देवें।

मात्रा– 1 माशा तक यह भस्म लेकर उसमें थोड़ा कालीमिर्च का चूर्ण और घृत मिला सेवन करने से शूल तत्काल नष्ट हो जाता है।

(6) शीतांग सन्निपात पर– इसके कन्द के चूर्ण के साथ कुलथी, पीपल, बच, कायफल, और काला जीरा का चूर्ण मिला शरीर पर मालिश करने से लाभ होता है।

(7) अश्मरी पर– इसके कन्द को सुखाकर महीन चूर्ण बना रक्खें। इसे 3 माशे की मात्रा में नित्य शहद और शक्कर के साथ सेवन करने से पथरी नष्ट होती है।

इसी प्रयोग से उपदंश के कारण तालू में पड़ा छिद्र भी मिट जाता है।

(8) अपस्मार पर– इसकी जड़ को घृत के साथ घिसकर और उसमें थोड़ी शक्कर मिला नस्य देने, तथा इसकी जड़ के चूर्ण की मात्रा 1 माशा नित्य प्रति पीसकर पिलाने व पौष्टिक आहार का सेवन कराते रहने से लाभ होता है।

(9) कामला पर– इसकी जड़ के चूर्ण की नस्य देने

---

1. चूहे के विष पर–दंश स्थान पर इसके पत्तों की लुगदी बांधते हैं तथा इसके कन्द के क्वाथ को पिलाते हैं। अथवा कन्द के चूर्ण को पानी के साथ सेवन कराते हैं। चूहे के विष पर यह अव्यर्थ महौषधि है।

—वैद्य शीतल प्रसाद जी शर्मा आयुर्वेद शास्त्री

तथा गिलोय पत्र को तक्र के साथ पीसकर पिलाने और पथ्य में केवल तक्र या भात देते रहने से लाभ होता है। —बंगसेन

(10) श्वास और कास पर— इसके कन्द के चूर्ण की मात्रा 3 माशे तक लेकर उसमें 4 नग काली मिर्च का चूर्ण मिला जल के साथ पीस छानकर पिलावें। एक घंटा पश्चात दूध पिलावें। सब कफ निकल कर श्वास में लाभ होगा।

खांसी में इसके चूर्ण को (उचित मात्रा में) गर्म पानी के साथ प्रातः सायं सेवन करावें। तथा इसकी बटिका बनाकर चूसें। —बूटी दर्पण

(11) मृतवत्सा रोग पर— गर्भसंधान काल में, अथवा एक पक्ष, मास या दो तीन वर्ष की होकर जिस स्त्री की संतान काल कवलित हो जाती हो उसके लिये इसकी जड़ को कृत्तिका नक्षत्र में उखाड़ कर धोकर शुष्क करने के बाद ऋतुस्नानोपरांत 7 दिनों तक प्रति दिन प्रातः 3 माशे की मात्रा में गौदुग्ध के साथ घोटकर पिलावें। मसान रोग दूर होकर बच्चा दीर्घजीवी होता है। —बूटी प्रचारक

(12) पारद बन्धन और मारण— इसके मूल के स्वरस में पारे को घोटने से उसकी गोली बनती है। तथा इसके स्वरस की 5–7 भावनायें देकर इसके मूल में रख कर कपड़ा भिगोकर शराब संपुट में धरकर फूंकने से पारद भस्म हो जाती है।

—आयुर्वेदाचार्य पं0 भागीरथ स्वामी (स0नि0व0 शास्त्र)

(13) शोथघ्न लेप— इसके कन्द के शुष्क चूर्ण को गरम पानी में आवश्यकतानुसार घोटकर दिन में 3–4 बार पतला पतला लेप करने से मसूढ़ों का शोथ, कर्ण मूल शोथ, तथा भयंकर पीड़ा एवं शोथयुक्त कठिन फोड़ा पककर शीघ्र फूट जाता है या बैठ जाता है। साथ ही चोट लगने से हुये शोथ तथा रक्तज शोथ पर भी यह लाभदायक है। —वैद्यराज पं0 परशुराम जी जोशी

कचनार (लाल) (Bauhinia Variegata)

यह शिम्बी वर्ग (Leguminoseae) की भारतवर्ष की एक प्रसिद्ध बनौषधि है। डाक्टर देसाई जी ने शिम्बी वर्ग के स्थान में पूति करंजवर्ग (Caesalpinae) लिखा है और उसी में इसकी गणना की है। इस वर्ग का वर्णन कटकरंज के प्रकरण में देखिए। भावप्रकाश आदि आयुर्वेदीय ग्रन्थों के अनुसार इसकी गणना गुडुच्यादि वर्ग में की गई है।

कचनार के कई भेद हैं। डाक्टर ऐन्सली ने इसके 13 भेदों का उल्लेख किया है। उनमें से एक मालजन, जलूर आदि हिन्दी नामों से प्रसिद्ध लता जाति का कचनार है। इसका वर्णन आगे 'जलूर' के प्रकरण में देखिये। एक कठमदुली नाम का कचनार है जिसका वर्णन आगे कचनार भेद के प्रकरण में किया गया है। एक कुराल या कन्दला नाम का कचनार है, इसका वर्णन कुराल के प्रकरण में देखें।

एक करमई नामक कचनार की जाति विशेष है। इसके झाड़ीदार पेड़ दक्षिण मलाबार आदि प्रान्तों में बहुतायत से होते हैं। हिमालय की तराई में गंगा से लेकर आसाम तक तथा बंगाल और वर्मा में भी यह पाया जाता है। बम्बई में इसकी चरपरी पत्तियाँ खाई जाती हैं तथा अन्यत्र भी इसकी कोमल पत्तियों का साग बना कर खाते हैं। इनके गुण धर्म कचनार के समान ही हैं।

एक छोटा कचनार होता है जिसे कचनारी, कंचनिया या काँचनी कहते हैं। इसकी पत्तियाँ और फल अपेक्षाकृत बहुत छोटे छोटे होते हैं।

इसके अतिरिक्त नागपूत (Bauhinia anguina) गुंडागिल्ला (Bauhinia monostachya) आदि कई भेद कचनार के हैं।

दशहरें (विजयादशमी) के दिन इसकी पत्तियाँ सुवर्ण (काँचन) के समान आपस में भेंट रूप से वितरण की जाती हैं, इसी से शायद इसे काँचनार कचनार आदि कहते हैं।

आयुर्वेदीय निघण्टु में इसके लिये 'कोविदार'* शब्द की योजना बहुत भ्रमोत्पादक हो गई है। कोविदार शब्द से

---

*कोई कहते हैं कि यह भूमि को विदारण कर (कोः भूमेः विदारणात् कोविदारः) निकलता है, अतः कोविदार कहाता है तथा देखने में आता है कि कचनार वृक्ष की जड़ के पास की भूमि प्रायः कुछ दरारयुक्त होती है। यह बात हमारे देखने में नहीं आई है तथा शब्द की व्युत्पत्ति के फेर में न पड़ते हुए हम इतना ही कह सकते हैं कि कोविदार यह साधारणतया कचनार का एक पर्यायवाची शब्द है। भावप्रकाश के टीकाकारों ने कचनार के पर्याय वाची शब्दों को लाल और श्वेत कचनार में विभक्त कर दिया है और कहा है कि कांचनार अर्थात् लाल कचनार के कांचनक, गंडारि और शोणपुष्पक पर्यायवाची नाम हैं तथा कोविदार (श्वेत कचनार) के चमरिक, कुछाल, ताम्र पुष्प आदि नाम हैं।

प्रायः श्वेत, लाल, पीले आदि सर्व प्रकार के कचनारों का बोध कराया गया है। कोई लाल कचनार को और कोई श्वेत कचनार को कोविदार मानने को आग्रह करते हैं तथा आधुनिक पंड़ितों के मत से श्वेत कचनार को ही कोविदार माना गया है। तथा चरकाचार्य जी ने भी दशेमानि वमनोपवर्ग में और सुश्रुत जी ने ऊर्ध्वभाग रक्तपित्तहर गण में कोविदार या कर्बुदार नाम से इसे ही अभिहित किया है। अस्तु।

आयुर्वेदीय मत से भी पुष्पों के रंग भेद से कई प्रकार के कचनार के वृक्ष होते हैं। उनमें से तीन प्रकार के कचनारों का विशेष उल्लेख किया गया है–

(1) कचनार लाल– जिसमें कुछ जामुनी लाल रंग के पुष्प आते हैं। अन्य कचनारों की अपेक्षा यह प्रायः सर्वत्र सुलभता से प्राप्त होता है।

(2) कचनार श्वेत– सफेद फूल वाला कचनार। इसमें कुछ सुगन्धित पुष्प वाले और कुछ निर्गन्ध पुष्प वाले होते हैं। आपटा या अश्मन्तक इसी का ही एक भेद है।

(3) कचनार पीला– पीले पुष्प वाला कचनार। किसी किसी ने आपटा को पीले कचनार का भेद माना है।

प्रायः सब कचनार की लकड़ी का रंग लाल या धूसर होता है। और छाल से रंग निकाला जाता है जो चमड़ा रंगने के काम आता है। छाल के रेशों से रस्सी आदि बनाई जाती है। इसके पत्ते चारे के रूप में पशुओं को खिलाये जाते हैं। तथा पहले इसी के पत्तों की भी बीड़ियाँ बनाई जाती थीं। अभी भी पहाड़ी प्रदेशों में इसी के पत्तों में तम्बाकू भरकर पीने की बीड़ी बनती हैं।

इसके वृक्ष और फूल अत्यन्त शोभायमान होते हैं। कविश्रेष्ठ कालीदास जी ने तो इसे चित्त को विदारण करने वाला कहते हुये कोविदार संज्ञा की सार्थकता की है–

चित्तं विदारयति कस्य न कोविदारः।। ऋतुसंहार

उक्त विभाजन युक्तियुक्त है। कांचनार के लिए जो शोण पुष्पक शब्द है वह गहरे लाल का द्योतक नहीं, प्रत्युत् कोकनद (कोकान् चक्रवाकान् नदति नादयति) च्छविं अर्थात् चितकबरा, रंगबिरंगी लाल, कुछ जामुनी रंगयुक्त लाल का बोधक है (जैसे– नीलनलिनाभमपि तन्वि तव लोचनं धारयति कोकनद रूप–गीतगोविन्द) तथा इसीसे लेटिन में इसे बोहीनिया ह्वेरिगेटा (Bauhinia Variegate) अर्थात् रंगबिरंगी कचनार नाम दिया गया है। उसे कर्बुदार भी कह सकते हैं।

किन्तु उधर कोविदार (श्वेत कचनार) के पर्याय में जो ताम्रपुष्प शब्द है, वह अड़चन पैदा करता है। यदि यहाँ ताम्र से कुछ गुलावी रंगयुक्त श्वेत अर्थ लिया जाय तो यह अड़चन दूर हो जाती है। –लेखक

कचनार (लाल)
Bauhinia Variegata, Linn

प्रायः सभी कचनार के फलों की कलियों का साग, अचार, रायता आदि बनाया जाता है। साग बड़ा सुन्दर और रुचिकारक होता है। यह विशेषकर मधुर, किंचित् कसैला, शीतल, मलरोधक रूक्ष और वातकारक है तथा पित्त, रक्तस्राव, रक्तप्रदर आदि रोगों में अधिक हितकारी है। प्रमेह विशेषतः पुराने प्रमेह रोग में इस साग का अच्छा असर देखा जाता है। मधुमेह में कचनार की कलियों का तक्र (मट्ठा) या दही के साथ बनाया हुआ रायता बड़ा लाभदायक होता है।

यद्यपि सर्व प्रकार के कचनार प्रायः समान गुणधर्म वाले हैं। तथा एक के अभाव में अन्य का व्यवहार भी किया जाता है, तथापि स्पष्ट बोधार्थ हमने इनका वर्णन पृथक पृथक प्रकरणों में किया है। प्रथम कचनार का वर्णन इस प्रकार है–

नाम–

संस्कृत– कांचनार, कांचनक, गंडारि, शोणपुष्पक
हिन्दी–कचनारलाल। मरेठी–रक्तकांचन, तांडेब मंदार।
गुर्जर– चंपाकाटी, कृष्णाबली
बंगाल– रक्तकांचन, काँघन, फूलेर गाछ
अंग्रेजी––मौन्टेन एबोनी (Mountain eboney)
लेटिन–बीहीमिया व्हेरीगेटा

उत्पत्ति स्थान–

यह हिमालय की तराई प्रदेशों में बहुतायत से होता है तथा भारतवर्ष, सिक्किम और वर्मा के जंगलों में प्रायः सर्वत्र पाया जाता है। बाग बगीचों में भी यह शोभा के लिये लगाया जाता है। प्रायः पहाड़ी शुष्क प्रदेशों में यह बहुत होता है।

विवरण–

इसका पेड़ छोटे आकार का लगभग 5 से 10 फुट या 15 फुट तक ऊँचा सीधा और घेरेदार होता है। तना या पीढ़ ठिंगना, गोलाई में 4–5 फुट होता है। यह अन्य कचनार वृक्षों से टिकाऊ और मोटा होता है। शाखायें पतली पतली झुकी हुई होती हैं। छाल हलकी तथा धूसर वर्ण की एक इंच तक मोटी कुछ खुरदरी सी होती हैं। छाल से लाल रंग निकाला जाता है। यह स्वाद में कुछ कसैली होती है। अन्दर की लकड़ी भूरापन लिये बादामी रंग की होती है। इसकी जड़ें लम्बी जमीन में गहरी गई हुई होती हैं।

पत्र–इसके पत्ते विषमवर्ती, 3 से 5 इंच तक लम्बे और उतने ही चौड़े, गोलाकार और सिर पर दो भागों में विभक्त होते हैं। दूर से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है मानों दो पत्तियाँ परस्पर में जुड़ी हुई हों और सिरे पर पृथक हो गई हों, इसीलिये इसे 'युग्मपत्र' कहते हैं। पत्र पर बारीक बारीक नसें उभरी हुई 9 से 11 तक होती हैं तथा पृष्ठ भाग सूक्ष्म रोवों से व्याप्त होता है। शीतकाल में ये पत्तियाँ झड़ जाती हैं। फिर फाल्गुन से ज्येष्ठ मास तक नवीन पत्र फूटते हैं।

पुष्प– पत्तों के झड़ जाने पर बसंत ऋतु में प्रथम कली के रूप में हरे और लम्बे पुष्प निकलते हैं। विकसित होने पर (खिलने पर) ये गुलाबी लाल या जामुनी रंग के बड़े सुहावने मालूम देते हैं। प्रत्येक पुष्प में 5 पंखुड़ियां चौड़ी विषमाकृति की होती हैं। इनमें 4 पंखुड़ियाँ हलकी जामुनी लाल रंग की और एक गहरे रंग की होती है। पुंकेशर की संख्या 5 तथा उनके मध्य में एक स्त्री केशर होता है। पुष्पों से भीनी मीठी सुगन्ध आती है। भौंरों और मधुमक्खियों से गुंजायमान इसका फूला हुआ वृक्ष बहुत ही शोभायमान दिखलाई देता है।

फलियाँ– पुष्पों के झड़ जाने पर इसमें चिपटी 6 से 10 इंच तक लम्बी तथा पाव इंच से एक इंच तक चौड़ी सेम जैसी फलियाँ लगती हैं। प्रत्येक फली में 6 से 12 तक गोल चिपटे आकार के छोटे छोटे बीज होते हैं। वृक्ष पर ही फलियों के सूख जाने पर वे फूटती हैं तथा बीज बिखर जाते हैं। बीजों से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है जो प्रायः जलाने और वार्निश के काम में आता है। इसके गुण बहेड़े के तेल के समान हैं।

गोंद– इसके पेड़ से एक प्रकार का भूरे रंग का गोंद निकलता है जो कतीरा गोंद के समान पानी में फूल उठता है। बहुत कम घुलता है। यह औषधि कार्य में आता है। छाल के प्रायः सब गुण धर्म इस गोंद में पाये जाते हैं।

गुण धर्म–

आयुर्वेदीय मतानुसार–

यह रस में कसैला, वीर्य में शीतल, विपाक में कटु, ग्राही तथा पित्त, कफ, कृमि, कुष्ठ, गुदभ्रंश, गंडमाला, व्रण, वातरोग, रक्तविकार, फिरंग उपदंश और आमवातादि नाशक है। यह वातज दोषों को मल मार्ग से बाहर निकाल देता है। इसकी मुख्य क्रिया त्वचा और रस ग्रन्थियों पर होती है।

कफ और मेदा के विकार जन्य (कफ वृद्धि व मेद दौर्बल्य के कारण) जो गंडमाला, अपची आदि रोग होते हैं, उन पर यह अपनी कफ शोषण और मेद को बलप्रदान रूप क्रिया से सुधार करता हैं। भल्लातक या भिलावा अपनी कफमेद पाचन रूप क्रिया से यही कार्य करता है, यही इन दोनों में भेद है। किन्तु भिलावा सबकी प्रकृति के अनुकूल नहीं होता और यह प्रायः सबको अनुकूल ही होता है।

उक्त गण्डमाला आदि रोगों पर कई बार इसकी योजना गूगल के साथ की जाती है अथवा इसकी छाल के क्वाथ में सोंठ का चूर्ण मिलाकर या छाल के चूर्ण को तण्डुलोदक के साथ पीसकर कुछ दिनों तक (लगभग 42 दिन) सेवन कराते हैं तथा छाल को पीसकर बाह्य प्रलेप आदि क्रिया की जाती है। यही प्रलेप स्नायुक (नहरुआ) पर भी लाभदायक होता है।

जिन कुष्ठ आदि त्वचा के रोगों में लसिका स्राव की विशेषता हो, उन पर यह अपनी शोषण क्रिया द्वारा लसिका स्राव को बन्द करता है, तथा अपने कषाय रस से त्वचा को शुद्ध कर देता है। इन रोगों पर भी इसकी छाल का उपयोग गूगल के साथ, या क्वाथ आदि रूपों में किया जाता है।

प्रमेह आदि मूत्र सम्बन्धी विकारों में यह अपने मूत्र संग्रहणीय गुणों से कार्य कर लेता है, तथा अपने कषाय रस प्रधान गुणों से विशेषकर कफ पित्त जन्य प्रमेह रोगों में बढ़े हुये द्रव्य कफधातु क्लेद मूत्रादि का शोषण कर शरीर के शैथिल्य को दूर करता है, तथा मेद को बलवान बनाता है। इसी प्रकार यह व्रणों पर भी अपना इष्ट कार्य करता

है। व्रणान्तर्गत राध, पूय, क्लेद आदि को शोषण करता है, जिससे व्रण का शोधन होकर रोपण कार्य शीघ्र ही प्रारम्भ हो जाता है। विशेषकर मधुमेह जन्य व्रण पिड़िकाओं पर इसकी छाल के क्वाथ का बाह्याभ्यन्तर प्रयोग लाभदायक होता है।

गुद शैथिल्य या प्रवाहिका के उपद्रव स्वरूप हुआ जो गुदभ्रंश रोग, उसमें भी यह अपने कषाय रस प्रधान गुणों से गुदा का संकोचन करता है, तथा तदन्तर्गत शैथिल्य को दूर कर देता है। इस पर भी इसकी छाल के क्वाथ का अन्तर और बाह्य प्रयोग किया जाता है।[1]

छाल के क्वाथ में स्वर्ण माक्षिक भस्म बुरका कर पिलाने से अन्तर्गत मसूरिका (चेचक) बगैर किसी कष्ट के बाहर निकल आती है और रोगी को शान्ति प्राप्त होती है। छाल के रस में या क्वाथ में जीरा चूर्ण और थोड़ा कपूर मिलाकर पिलाने से दाह में, तथा छाल को औटाकर गंडूष या कुल्ले करने से दांत और मसूढ़ों की पीड़ा में लाभ होता है। छाल के क्वाथ के सेवन से मंदाग्नि दूर होती है।

छाल और पुष्प की मात्रा 6 माशे तक है।

फूल– इसके फूल शीतल, कसैले, रूक्ष, ग्राही, मधुर, हलके तथा पित्त, क्षय, प्रदर, खांसी, अतिसार, प्रमेह, रक्तविकार आदि नाशक है। फूलों की कलियों का साग, रायता आदि बनाया जाता है। ऊपर विशेष वक्तव्य में इसके गुणधर्म हम लिख चुके हैं।

फूलों की कली को घृत में भूनकर खाने से अरुचि में तथा इस कली के साथ कच्चे केले को मिलाकर साग बनाकर सेवन करने से अतिसार में लाभ होता है। फूलों के क्वाथ में मधु मिलाकर सेवन करते रहने से रक्तविकार दूर होता है।

पत्र– कसैले मुखशुद्धिकारक और दन्त पीड़ा नाशक है। इसके कोमल पत्तों के चूर्ण से मन्जन करने से दांतों की पीड़ा दूर होती है।

फली– कसैली, ग्राही, प्रमेह और अतिसार नाशक है। कच्ची कोमल फली का साग घृत में जीरा और काली मिर्च का छौंक देकर बनाया जाता है जो प्रमेही और अतिसारी को लाभ पहुँचाता है। स्वास्थ्य दशा में भी यह साग महत् उपकारी है। साग बनाते समय प्रथम फलियां को उबाल कर पानी फेंक देना चाहिये।[2]

यूनानी मतानुसार–

यह दूसरे दर्जे में शीतल और रूक्ष है। कोई इसे समशीतोष्ण मानते हैं। यह मेद और आंतों को कुब्वत देता है, पेट को गुंग करता है, अतिसार और स्त्रियों के अधिक ऋतुस्राव को दूर करता है; पेट के कीड़ों को नष्ट करता और खूनफिसाद (रक्त विकृति) को दूर करता है।

यह देर से हजम होता है, अफरा पैदा करता, और खुश्की पैदा करता है। गुलकन्द, माँस, नमक और गरम मसाला इसके दर्पघ्न हैं। सूखा बाकला इसका प्रतिनिधि है।

इसकी जड़ की छाल का काढ़ा पिलाने से अग्निमांद्य दूर होता है, आँत्रकृमि नष्ट होते हैं। छाल के क्वाथ को ठण्डा कर, शहद मिला सेवन करने से रक्तशुद्धि होती है। छाल को चावल के धोवन में पीस व छानकर तथा सौंफ का चूर्ण मिलाकर सेवन करते रहने से गण्डमाला में लाभ होता है। छाल को चावल के धोवन के साथ पीस व पकाकर पुलटिस बना बाँधने से फोड़ा शीघ्र पक जाता है। छाल के साथ जामुन और मौलसरी वृक्षों की छालों को कूट पीस जल में पकाकर गुदमार्ग को धोते रहने से रक्त की बवासीर में, छाल के साथ अकाकिया और अनार के फूल मिला काढ़ा बना कुल्ले करने से पारा, हिंगुल, भिलावा व रस कपूर से हुये मुखपाक और अन्य मुख रोगों में, तथा छाल का चूर्ण शुक्रमेह में लाभदायक है।

फूल– फूलों का गुलकन्द अथवा सूखे फूलों के चूर्ण में शक्कर मिला सेवन से कोठे का कड़ा मल ढीला पड़ जाता है। फूलों को चावल के धोवन में पीस व पकाकर

---

1. कचनार की पत्तियों की लुगदी बना बांधने से यां इसके बीजों का तेल लगाने से भी गुदभ्रंश में लाभ होता है। इसकी छाल का काढ़ा सेवन करने से अतिसार के साथ शरीर का मोटापन दूर होकर शरीर हल्का हो जाता है।

स्त्रियों की आर्तव शुद्धि के लिये इसके फूलों का क्वाथ पिलाया जाता है, जिससे आर्तव की शुद्धि के साथ अधिक आर्तव स्राव से होने वाली अशक्ति भी दूर होती है।

इसके पंचांग की भस्म को उचित मात्रा में (2 मास तक) शहद के साथ चटाते रहने से कास श्वास में लाभ होता है। —लेखक

2. छोटा कचनार या कांचनी जो लाल कचनार का ही एक भेद है, यह शिरोरोग और त्रिदोषनाशक है। स्तनों में दूध बढ़ाने वाला है।

इसके फूलों का क्वाथ आमातिसार नाशक है। कहा है–"कांचन्युक्ता शीर्षरुजं त्रिदोषं च विनाशयेत्। स्तन्यभ्य वर्द्धनकरीऋषिभिः सूक्ष्मदर्शिभिः।।" (नि० रत्नाकर)

पुल्टिस बना बांधने से फोड़ा पक जाता है। फूलों की कलियों के काढ़े से आँत्र कृमि नष्ट हो जाते हैं। फूलों का चूर्ण मिश्री और मक्खन के साथ सेवन से रक्तार्श में तथा फूलों के चूर्ण को शहद के साथ चाटने से सुर्ख बाद (त्वचा का लाल पड़ जाना) रोग में लाभ होता है।

फली–इसकी फलियों के चूर्ण को जल के साथ सेवन करने से अतिसार में लाभ होता है।

बीज– बीजों को सिरका के साथ पीसकर प्रलेप करने से व्रण के कृमि नष्ट होते हैं।

पत्ते– इसके पत्तों के चूर्ण को अर्क सौंफ के साथ सेवन करने से आमातिसार में लाभ होता है।

लकड़ी–इसकी लकड़ी के कोयलों से मन्जन करने से दाँतों का दर्द दूर होता है।

नौट– शेष गुणधर्म आयुर्वेदीय मतानुसार ही हैं।

आधुनिक मतानुसार–

इसकी छाल में कषायसार (Tannin) ग्लूकोज और एक भूरे रंग का गोंद पाया जाता है।

छाल रसायन या धातु परिवर्तक (Alterative) बल्य व संकोचक है। इसकी जड़ कोष्ठवात प्रशमन (Carminative) है। पुष्प आनुलोमिक या कोष्ठमृदुकर (Laxative) हैं।

औषधि–निर्माण– इसके इमलशन, बटिका, कल्क (Paste), गण्डूष (Gargle) और क्वाथ बनाये जाते हैं। मात्रा आधे से 1 औंस तक।

छाल के काढ़े से व्रण और चर्म रोगों को धोना उपयोगी है, तथा यह अतिसार नाशक है। इसके फूलों की सूखी कलियाँ अतिसार, कृमि, अर्श और प्रवाहिका में उपयोगी हैं।

इसके मूल का क्वाथ अग्निमांद्य और मेद रोग (स्थूलता) पर दिया जाता है। छाल के कल्क में सोंठ का चूर्ण मिला गण्डमाला की ग्रन्थियों पर लेप किया जाता है।

–डा0 नाडकर्णी (इ0मे0 मेडिका)

इसकी छाल और पुष्प कलियाँ रसायन और संकोचक (स्तम्मन, ग्राही तथा संग्राहक) हैं। छाल का क्वाथ कुष्ठ, गण्डमाला, विविध चर्म रोग, और व्रणों में दिया जाता है। गण्डमाला रोग गलग्रन्थियों के बढ़ जाने पर इसकी छाल के साथ सोंठ मिला चावल के धोवन में तेल पानी का घोल अर्थात् इमलशन (Emulsion) के रूप में तैयार कर दिया जाता है। अथवा उसके साथ शाल्मली निर्यास (Gum resin of Boswellia Serrata) हरड़ एवं अन्यान्य सुगन्धि द्रव्यों को मिला कर दिया जाता है। इसकी छाल के साथ अनार के पुष्प और बबूल की छाल मिला क्वाथ बनाया जाता है, जो गलक्षत तथा लालास्राव के प्रतिकारार्थ कुल्ले कराने के काम में आता है। इसके पुष्प कली का क्वाथ अत्याधिक आर्तवस्राव, रक्त प्रदर, रक्तार्श आदि के रक्तस्राव (Haemarrhoids) श्लेष्मधरकला के रक्तस्राव (Bleeding from thin mucous surfacecs) खाँसी और रक्तमूत्रता रोगों में दिया जाता है।

–डा0 आर0 एन0 खोरी (म0 से0 इण्डिया)

इसकी क्रिया त्वचा तथा त्वचा के उपभाग रस ग्रन्थि पर होती है। इन भागों की विनियम क्रिया का सुधार हो जाता है। यह ग्राही, ब्रणशोधन और व्रण रोपण है। इसकी अधिक मात्रा देने से वमन और रेचन होता है।

गण्डमाला और अपची रोगों में इसका व्यवहार बहुत किया जाता है। छाल के क्वाथ में गूगल आदि प्रयोजक औषधियों के साथ दिया जाता है तथा उससे व्रणों का प्रक्षालन किया जाता है। इसके प्रयोग से नवीन रोगों (अचिरकाल उत्पन्न रोगों) में शीघ्र लाभ होता है।

–डा0 देसाई (औ0 संग्रह)

इसकी छाल कसैली, बल्य और चर्म विकारों में हितकर है। जड़ का क्वाथ ग्रहणी, उदराध्मान (अफरा) में दिया जाता है। फूलों को पीसकर शक्कर मिला सेवन करने से कोष्ठ का कड़ापन दूर होता है। इसकी सूखी कली रक्तातिसार और अर्श में हितकारी है। डा0 डीमक के मत से इसके पत्तों का क्वाथ मलेरिया ज्वर, सिर पीड़ा को दूर करता है।

–डा0 जार्जवैट (डी0 एफ0 प्राडक्ट्स इंडिया)

इसकी जड़ का क्वाथ मेद या वसा (Fat) नाशक है। अतः यह स्थूल मनुष्यों के लिये विशेष लाभदायक है। इसके रस के पुट देने से सुवर्ण भस्म होता है। इसका गोंद अर्श और प्रवाहिका रोग में विशेष गुणकारी है। इसकी छाल के साथ खैर की छाल मिला काढ़ा बना कुल्ले करने से जीभ का फटना दूर होता है। –डा0 नगेन्द्रनाथ सेन

सिद्ध साधित प्रयोग–

(1) कांचनार गुग्गुल–कचनार की छाल का चूर्ण 40 तोला (आधा सेर) के साथ हरड़, बहेड़ा, आमला 8–8 तोला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, बरने की छाल 4–4 तोला तथा इलायची, दालचीनी और तेजपात प्रत्येक का चूर्ण 1–1 तोला सब चूर्ण को एकत्र कर उसमें सबके समभाग गूगल मिला 24 घण्टे कुटाई करें। जब अच्छी तरह एक

जान हो जाय तो 3–3 माशे की गोलियाँ बना लें।

मात्रा– 1 से 2 गोली, गोरख मुण्डी, अथवा खैरसार (कत्था) अथवा हरड़ या गरम जल के साथ सेवन करने से भयंकर गण्डमाला, अपचि, अबुर्द, ग्रन्थि, घाव, गुल्म, कुष्ठ और भगन्दर का नाश होता है। अथवा–

कचनार की छाल का चूर्ण 12 तोला, सोंठ, मिर्च, पीपल 2–2 तोला, त्रिफला 1 तोला इन सबके चूर्ण को एकत्र कर उसमें 21 तोला गूगल मिला खूब कूटें। अच्छी तरह एकजान हो जाने पर उसमें 30 तोला शहद मिला खूब खरल करें। जब गोली बनाने लायक हो जाय तो 3 से 6 माशे तक की गोलियाँ बना लें। इनका सेवन उक्त प्रकार से करने से गण्डमाला, गलगण्ड, ब्रण, ग्रन्थि आदि का नाश होता है।

(2) काँचनारादि क्वाथ– कचनार छाल 1 सेर, शातहरा (पित्तपापड़ा), मुण्डी, कुटकी, उसवा प्रत्येक 40–40 तोले और बरना की छाल 20 तोले इन सबको एकत्र जौकुट कर रखें।

मात्रा– 2½ तोला चूर्ण आध सेर जल में पकावें। चौथाई (10 तोला) शेष रहने पर छान लें। ठण्डा हो जाने पर उसमें 1 तोला शहद मिला सेवन करें। इस प्रकार प्रातः सायं सेवन करने से गण्डमाला, ग्रन्थि तथा अन्य रक्तविकार जन्य रोगों में परम लाभ होता है। गुग्गुल के अनुपान में यह क्वाथ विशेष लाभदायक होता है।

नोट– क्वाथ के अन्य प्रयोग शास्त्र में देखिये।

(3) गुलकन्द कचनार–कचनार के अर्धविकसित पुष्प (अध खिले) 1 भाग और मिश्री चूर्ण या दानेदार शक्कर 2 भाग दोनों को अच्छी तरह मसलते हुये मिला कर भरनी में भर 15 दिन तक धूप में रखें। गुलकन्द तैयार हो गया।

मात्रा– 2½ तोले तक, नित्य प्रातः सेवन करने से कब्जी तथा रक्तविकार और बवासीर खूनी का नाश होता है।

(4) काँचनारारिष्ट– इसकी कोमल फलियां 5 सेर जौकुट कर उसमें 1 मन 12 सेर जल मिला पकावें। 13 सेर जल शेष रहने पर उसे चिकने तथा गूगल से धूपित मटके में भर उसमें धाय के फूल आध सेर, शहद 10 सेर तक तथा सोंठ, सफेद जीरा, कालीमिर्च और शुद्ध गूगल का चूर्ण 4–4 तोले मिला लें। अच्छी तरह मुख संधान कर एक मास तक सुरक्षित रखें। पश्चात् छानकर बोतलों में भर कर रक्खें।

मात्रा– 1 से 4 तोला तक निवाये जल के साथ सेवन करने से शीघ्र रक्त शुद्धि होती है। गंडमाला कुष्ठादि चर्म रोग, दाह, अतिसार तथा आंत्र के कृमियों का यह नाशक है।

रोगानुसार मुख्य प्रयोग–

(1) गण्डमाला, अपची आदि ग्रन्थियों पर इसकी छाल 4 तोले जौकुटकर कलईदार पात्र में 40 तोला जल के साथ पकावें। अष्टमाँश अर्थात् 5 तोला जल शेष रहने पर नीचे उतार सुखोष्ण होने पर छानकर उसमें सोंठ चूर्ण 3 से 5 माशे तक व मधु 1 तोला मिलाकर नित्य एक बार पिलावें। 40 दिन के अन्दर ही लाभ होता है। यदि रोगी को कोष्ठबद्धता हो तो सोंठ के स्थान में केवल शहद 6 माशे तक मिला सेवन करें। इससे दस्त साफ होकर शनैः शनैः गण्डमाला की ग्रन्थियों का जोर कम पड़ जाता है। इस क्वाथ के प्रयोग के समय कचनार की छाल को पीसकर ग्रन्थियों पर नित्य दो बार प्रलेप करते रहना चाहिये। इस प्रकार इसके सेवन से शरीर की प्रायः किसी भी प्रकार की ग्रन्थियों में लाभ होता है।

यदि रोगी के शरीर पर दाह हो, अत्यधिक पित्त प्रकोप हो तो उक्त क्वाथ में केवल सफेद जीरे का चूर्ण और थोड़ा कपूर मिलाकर पिलाना चाहिये।

यदि गण्डमाला या कोई भी ग्रन्थि बहुत बढ़ गई हो तो कचनार की जड़ के साथ चित्रक और अडूसे की जड़ की छाल को पानी में पीसकर 6-7 दिनों तक नित्य 2-3 बार लेप करने से वह फूट जाती है।

गण्डमाला की प्रारम्भिक अवस्था में यदि उक्त क्वाथ की खटपट न हो सके तो कचनार की छाल दो से चार तोले तक, 10 तोले चावलों के पानी के साथ पीस छानकर उसमें सोंठ चूर्ण मिलाकर सेवन करते रहने से भी अवश्य लाभ होता है।

(2) मुखपाक पर– इसकी छाल 3 तोला को आध सेर जल में पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर उसमें एक तोला कत्था मिला कुल्ले करते रहने से मुख के अन्दर के छाले, जीभ का फटना आदि मुख रोगों में लाभ होता है।

यदि यह मुखपाक उपदंशजन्य हो तो कचनार की छाल अथवा पत्ते 1 पाव जौकुट कर उसमें 3 तोले तक कत्था और 6 माशे फिटकरी मिला 2 सेर जल में औटावें। एक या डेढ़ सेर जल शेष रहने पर उतार कर छान लें और सुखोष्ण होने पर कुल्ले करें। एक माह तक साथ ही साथ त्रिफला चूर्ण 6 माशे और मिश्री 6 माशे नित्य सेवन करें। पथ्य में हलकी वस्तुएं खावें। एक माह तक नित्य उक्त क्वाथ ताजा तैयार कर दिन में 3–4 बार कुल्ले करें।

(3) मसूरिका (चेचक) पर—इसकी छाल 3 या 4 तोले को जौकुट कर आध सेर जल में चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर छान लें। यदि चेचक निकलकर किसी कारणवश अन्दर बैठ गई हो तो इसमें 1 रत्ती उत्तम सुवर्ण माक्षिक भस्म मिलाकर सेवन करने से वह अच्छी तरह बाहर निकल आती है।

(4) आध्मान (अफरा) पर इसकी जड़ का अष्टमाँश क्वाथ सिद्ध कर उसमें 3 माशे तक अजवायन के चूर्ण को प्रथक फांक कर ऊपर से क्वाथ पिलाने से पेट का अफरा मिट जाता है।

(5) शोथ (सूजन) पर— इसकी जड़ को पानी में घिसकर तथा गरम कर संधिवात और रक्तविकार जन्य शोथ पर प्रलेप करें।

(6) दन्तरोग पर—इसकी छाल को जलाकर कोयला करें और उसे पीस महीन चूर्ण बना रक्खें। इससे नित्य मंजन करने से दांत मजबूत होते हैं। और उनसे खून आना बन्द हो जाता है।

(7) नेत्रों की दाह और लालिमा पर—इसकी ताजी पत्ती पीसकर टिकिया बना नेत्रों पर रख बांधा करें। शीघ्र ही 2—4 दिनों में लाभ होता है।

(8) प्रमेह पर—इसके पुष्पों की कलियों को खाँड़ के साथ कुछ दिन सेवन करने से लाभ हो जाता है।

(9) स्वर्ण और रौप्य भस्म—इसकी छाल या फूलों को पीसकर उसमें 6 माशे गंधक मिलाकर इस कल्क के मध्य भाग में स्वर्ण मुद्रा या स्वर्ण पत्र को रख शराब सम्पुट कर अग्नि दें। इस प्रकार 21 बार फूंकने से स्वर्ण भस्म तैयार हो जाती है।

चाँदी की भस्म करनी हो तो उक्त कल्क में गंधक मिलाने की आवश्यकता नहीं है। —बूटी प्रचार

कचनार छाल के रस में समभाग शुद्ध पारद और गंधक की कज्जली को प्रथम खूब खरल करें। पश्चात् 1 भाग स्वर्णपत्रों पर 1 भाग कज्जली कल्क का लेप कर दें। फिर कचनार छाल को महीन पीस दो मूषा बना उनमें उक्त स्वर्णपत्रों को बन्द करें और इस मूषा को शराब सम्पुट में बन्द कर ऊपर से अच्छी तरह कपड़ मिट्टी कर तीव्राग्नि में फूंक देवें। इस प्रकार केवल 3 बार पुट देने से निरुत्थ स्वर्णभस्म तैयार होती है। यह शास्त्रानुमोदित उत्तम प्रक्रिया है। —लेखक।

कचनार सफेद (Bauhinia Acuminata)

निर्गन्ध और सुगन्ध भेद से यह दो प्रकार का है। विशेष वक्तव्य देखिए कचनार—लाल के प्रकरण में।

नाम—

सं0—कोविदार, चमरिक, कुद्दाल, कुंडली, श्वेतकांचन।
हि0—कचनार-सफेद। मरेठी—पांढरे कांचन।
गुर्जर—धोलो कोचली। बंगला—श्वेत कांचन।
लेटिन—निर्गन्ध श्वेत कचनार को—बौहनिया—अक्युमिनेटा; और सुगन्धयुक्त को—बौहिनिया कंडिडा (Bauhinia Candida)

विवरण—

इसके पेड़ ऊँचे नहीं होते, तथा लाल कचनार के पेड़ जैसे मोटे और टिकाऊ भी नहीं होते। पत्ते 3 से 6 इंच तक लम्बे, तथा पुष्प कुछ लालिमायुक्त श्वेत वर्ण के होते हैं। कुछ सुगंधित पुष्प वाले और कुछ गंध रहित पुष्प वाले होते हैं। शेष विवरण लाल कचनार के समान ही हैं।

गुणधर्म—

आयुर्वेदीय मतानुसार—

यह मधुर, रुचिकारक, धारक तथा मूत्रकृच्छ्र, त्रिदोष शोष, दाह, कफ, वात, प्रदरनाशक है। रक्तपित्त और अर्श में विशेष पथ्यकर है।

इसकी जड़ में वामक गुण की विशेषता कही गई है किन्तु वास्तव में अत्यधिक मात्रा में ही यह कुछ वांतिकर है, तथा अन्य वमनकारक औषधियों के गुण—स्थापनार्थ यह उनके साथ मिलाई जाती है।

इसकी जड़ की छाल के चूर्ण को दही के साथ या मट्ठे के साथ मथकर सेवन कराने से अर्श रोग में लाभ होता है।

दूषित जलवायु के कारण हुये ज्वर में जो सिर पीड़ा होती है, उनके निवारणार्थ इसके पत्तों को क्वाथ और साग का सेवन कराया जाता है।

इसके पुष्प अधिकतर साग बनाने के काम में लाये जाते हैं। यह पुष्प—शाकों में स्वादिष्ट है। इसके पुष्पों के चूर्ण को मधु के साथ सेवन करने से पित्त प्रकोप की शान्ति होती है।

इसके पत्ते को घृत में भूनकर खाने से बुद्धि बढ़ती है।

इसके शेष गुण और प्रयोग लाल कचनार के समान ही हैं।

कचनार पीला (Bauhinia Purpurea)

इसमें ललाई लिये हुए पीले पुष्प लगते हैं। यह भारतवर्ष में पहाड़ी प्रदेशों को छोड़ अन्यत्र देखने में बहुत कम आता है। चीन देश में यह बहुतायत से होता है।

यह अधिकतर पहाड़ों पर ही होता है, अतः संस्कृत में इसे 'गिरजः', इसके पत्ते लाल और श्वेत कचनार के पत्तों की अपेक्षा बहुत बड़े होते हैं, अतः 'महायमलपत्रक' और इसके पुष्प भी अपेक्षाकृत बड़े होने से 'महापुष्प' कहते हैं।

मरेठी आदि भाषा में जिसे 'आपटा' तथा लेटिन में बौहिमिया टोमेन्टोसा या रेसिमोसा (Bauhimia Tomentosa या B. Recemosa) कहते हैं, वही इसी पीत कचनार का ही एक भेद है, जो भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र पाया जाता है। इसका वर्णन आगे के प्रकरण में 'कचनार भेद' नाम से किया जावेगा।

यहाँ पर केवल 'पीले–कचनार' का वर्णन किया जाता है।

नाम–

सं0– पीतकाचन, गिरिज, महापुष्प, महायमलपत्रक। हि0–पीलाकचनार, कनियार, कांड, कोलियार, सोना। खैरपाल। मरेठी–पिवला कांचन, अटमटी, देवकांचन। बंगला–कोइराल, देवकांचना। पंजाबी–कारा, कोइराल। लेटिन–बौहीनिया पर्प्युरिया।

कचनार पीला

Bauhinia Purpurea Linn.

उत्पत्ति स्थान–

हिमालय की तराई में तथा आबू, काठियावाड़, जूनागढ की टेकडियों पर पथरीले स्थानों में यह होता है।

विवरण–

इसका पेड़ मध्यम आकार का 10 से 15 फीट तक ऊँचा होता है। जड़ जमीन में अन्दर गहरी जाती हैं। जिसमें से कुछ मोटी और कुछ पतली उपजड़ें चारों ओर फैलती हैं। जड़ की ऊपरी छाल जाड़ी, खुरदरी, कलौंछ लिये हुए खाकी रंग की होती है। अन्तरछाल दृढ़ रेसाओं से युक्त होने पर भी ऊपर खींचने पर शीघ्र निकल आती है। यह गंध में सुवासित तथा स्वाद में कसैली, चरपरी होती है।

शाखायें ऊपर को चारों ओर फैली हुई बड़ी सुन्दर दिखाई देती हैं। शाखाओं की ऊपरी छाल, खाकी या गहरे बादामी रंग की कुछ चमकीली सी होती है। अन्दर की छाल पीताभ श्वेत वर्ण की दृढ़ रसायुक्त होती है। गंध में किंचित उग्र, स्वाद में कुछ मिठास लिये हुई कसैली तथा दाहक चरपरी सी होती है। कोमल शाखायें हरित वर्ण की तथा भूरे रंग के रोंवों से युक्त होती हैं।

पत्र– साधारण कचनार के पत्र जैसे ही होते हैं। किन्तु गंध में मधुर नींबू जैसे और स्वाद में कुछ खटास युक्त कसैले होते हैं। पत्ते की डेंठ में दोनों ओर एक एक उपपत्र होता है। जेठ आषाढ़ मास में कोमल पत्ते फूटते हैं। इनकी भाजी बड़ी स्वादिष्ट और निर्मल होती है।

पुष्प– गहरी गुलाबी छटा युक्त पीले रंग के अन्य कचनारों के पुष्पों से कुछ आकार प्रकार में बड़े होते हैं। पुष्प का बाह्य कोष (Calyx) आधा इंच लम्बा तथा घने रोंवों से व्याप्त होता है। पुष्प के आभ्यंतर कोष (Corolla) की पंखुड़ियाँ 1½ से 2 इंच तक लम्बी होती हैं।

फलियाँ– चपटी 4 से 5 इंच तक लम्बी तथा आधा इंच से कुछ अधिक चौड़ी होती हैं। ये फलियाँ कुछ पीताभ हरितवर्ण की होती हैं किन्तु सूखने पर बादामी रंग की हो जाती हैं। फली के भीतर 6 से 12 या 15 तक गोल गोल चिपटे चमकीले भूरे रंग के बीज होते हैं।

गुणधर्म–

आयुर्वेदीय मतानुसार–

अन्य कचनारों के समान ही यह कसैला, ग्राही, दीपन, व्रणरोपण तथा वात, कफ, शोथ, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर आदि नाशक है।

इसकी छाल का क्वाथ शांतिदायक, आंत्रकृमि तथा उदराध्मान (अफरा) नाशक है। रक्तातिसार में यह अपने संकोच धर्म द्वारा उत्तम कार्य करता है।

इसकी जड़ को पानी के साथ पीसकर संधिवात जन्य या रसविकार जन्य शोथ पर प्रलेप करने से, तथा इसकी छाल और पत्तों के क्वाथ को छाछ के साथ मिला पिलाने से जानवरों के चेचक (अकस्मात् शरीर पर बड़ी–बड़ी ग्रन्थियाँ उठ जाने जैसे) रोग में लाभ होता है।

इसकी शुष्क फलियों का चूर्ण आमातिसार नाशक है। इसके बीजों के ऊपर का छिलका उतार कर अन्दर की दाल को पानी के साथ पीसकर प्रलेप करने से ग्रन्थि, गूमड़ा, मोच, अस्थिभंग आदि पर लाभ होता है।

इसके फूल मृदु विरेचक हैं।

शेष गुण धर्म व प्रयोग लाल कचनार के समान ही हैं।

कचनार भेद (Bauhinia Recemosa)

यह भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र होता है। हिन्दी में भिंझरी, कठमहुली आदि प्रांत भेद से इसके कई नाम हैं।

भारतवर्ष के महाराष्ट्र, कोंकण, गुजरात आदि प्रान्तों में यह अत्याधिक पाया जाता है। महाराष्ट्र में तो असली कचनार यही माना जाता है और आपटा नाम से प्रख्याति है। दशहरे के दिन इस वृक्ष की पूजा की जाती है और उस दिन सायंकाल से लेकर रात्रि तक तथा दूसरे दिन भी इसकी पत्तियां परस्पर में सुवर्ण रूप से भेंट दी जाती हैं।

इसकी लकड़ी प्रायः ईंधन रूप में जलाने के काम आती है तथा मजबूत होने से इसके डंड़े, छड़ी आदि भी बनाते हैं। इसकी अन्तरछाल की रेसाओं से सुदृढ़ रस्से आदि बनाये जाते हैं। इसका एक भेद और है, जिसमें लाल फूल लगते हैं। छाल व शाखायें कोमल होती हैं। इससे बन्दूक का तोड़ा बनाते हैं। इसकी आग बुझती नहीं।

नाम–

सं0–अश्मन्तक, इन्द्रक, वनरांज।

हिन्दी– कटमहुली, कचनार–भेद, झिंझोरा, झिंझेरी, सिरहटा, असिमिलौरा, झिंझा, पापड़ी।

मराठी– आपटा, सोना, पिबला कांचन, चामल।

गुर्जर–आंसुन्द्रो, आशोंदरो, जेजवो। बंगला–वनराज।

पंजाबी–कोसुन्द्र। अंग्रेजी–डौनी मौटेन एबोनी (Downy mountain ebony)

लेटिन– बौहीनिया रेसीमोसा (B. Recimosa)

बौहीनिया टोमेन्टोसा (B. Tomentosa)

उत्पत्ति स्थान–

इसका मूल उत्पत्ति स्थान मलाबार माना जाता है, वैसे तो यहं समस्त भारतवर्ष में पाया जाता है। लंका में भी यह कहीं कहीं देखा जाता है। पहाड़ टेकड़ी आदि प्रायः पहाड़ी भूमि में यह अधिक पैदा होता है।

विवरण–

यह बहुशाखी वृक्ष पीत कचनार जैसा ही ऊँचा होता है। जड़ और शाखायें भी तैसे ही होती हैं।

छाल– श्वेत, धूसर वर्ण की और स्वाद में कसैली होती है।

पत्र–अन्य कचनार पत्र जैसे ही, किन्तु आकार प्रकार में छोटे दोहरे, गोल, लम्बाई में 1 से 1½ या 3 इंच तक होते हैं। कहा जाता है कि पत्र के दो विभक्त दल रात्रि के समय परस्पर जुड़ जाते हैं और प्रातः अलग हो जाते हैं।

पत्र-डंठल– गोल, कुछ चमकीले, प्रायः रोमयुक्त, ½ से ¾ इंच तक लंबे होते हैं। पत्तों की गन्ध नील चम्पा के फूल जैसी होती है, किन्तु मसलने पर मूली के पत्ते जैसी गन्ध आती है। ये स्वाद में कसैले तथा कुछ खटासयुक्त मीठे होते हैं।

कचनार भेद

Bauhinia Tomentosa Linn.

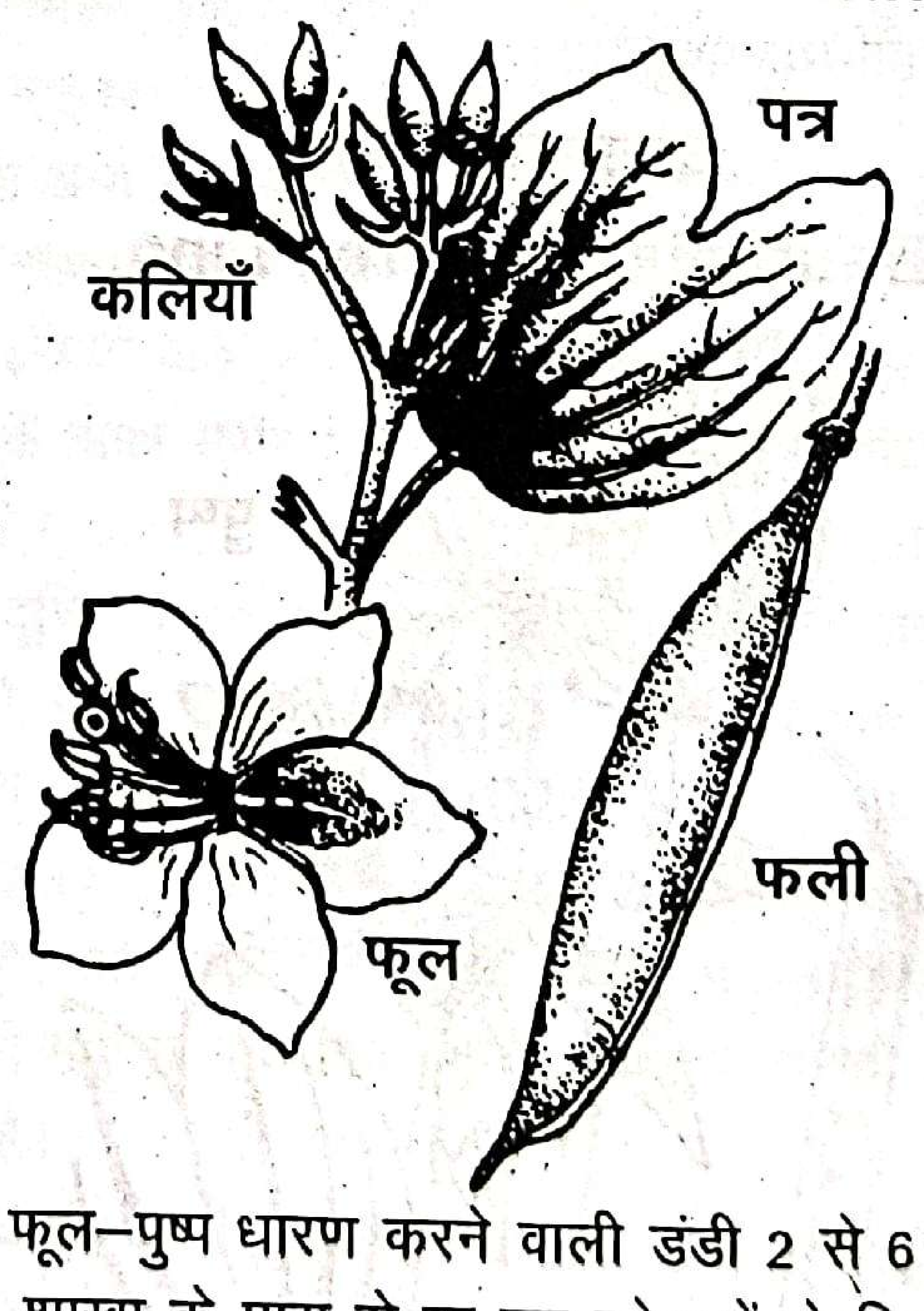

फूल–पुष्प धारण करने वाली डंडी 2 से 6 इंच तक लम्बी, शाखा के पास से या पत्र कोण में से निकलती है, जिस पर एक से सटे हुए चारों ओर फूल लगते हैं। कली की दशा में ये छोटी लौंगी मिरची जैसे पतले, कुछ टेढ़े और अनीदार होते हैं। खिलने पर 3–3 पुष्प दल अलग हो

जाते हैं। ये दल या पखुड़ियाँ पीताभ श्वेत घंटी के आकार की होती हैं, तथा उनके भीतर तंतु होते हैं। पुष्प–मकरन्द मधु जैसा मधुर होता है।

फली–बाकले की फली या लाल कचनार की फली जैसी होती है। यह 4 से 8 इंच लम्बी और आधे से एक इंच तक चौड़ी, चिपटी होती है। स्वाद में कसैली और कुछ मीठी सी लगती है। कच्ची फली को मसलने से प्रथम खीरे की सी गन्ध आती है। पकने पर फली का रंग कुछ काला सा पड़ जाता है। फली के भीतर छोटे, चपटे, काले रंग के बीज संख्या में लगभग 20 तक होते हैं। इन बीजों से तेल निकाला जाता है।

इसकी छाल, कच्ची फलियाँ और फूल रंग के काम में आते हैं। इसके वृक्ष से जो गोंद निकलता है वह कीकर के गोंद के समान काम में लाया जाता है। इसकी अन्तर छाल के रेशे या तन्तु घावों पर टाँके लगाने के काम में आते हैं।

गुणधर्म–

आयुर्वेदीय मतानुसार–

यह कसैला, अम्ल, शीतल, ग्राही, मूत्रल, शोधक, कफ, वीर्य और मल को शुष्क करने वाला तथा पित्त, वात, बहुमूत्र, प्रमेह, तृषा, विषम ज्वर, मूर्छा, भूत-बाधा, शुक्राश्मरी, कण्ठमाला, रक्तदोष, विस्फोटक, शोथ, अतिसार, कुष्ठ, गुदभ्रंश, कृमि, यकृत रोग, व्रण, विष, वमन आदि नाशक है।

छाल और पत्ते–संकोचक तथा पित्त, कृमि, ज्वर, मूत्र सम्बन्धी रोग, क्षयजन्य-ग्रन्थियां अर्बुद आदि नाशक है।

छाल के चूर्ण के साथ– काले तिल, मजीठ और सतावरी का चूर्ण मिला **दूध** के साथ सेवन से स्त्रियों को द्वितीय मास में होने वाली गर्भस्राव की शिकायत दूर होती है। मूल की छाल संग्रहणी रोग में सेवन कराने से, तथा मूल को कालीमिर्च के साथ पीस छानकर पीने व बाह्य प्रलेप से बात पीड़ा और शोथ में लाभ होता है।

इसके कोमल पत्तों के स्वरस से गौदुग्ध और मिश्री मिलाकर पिलाने से बालकों के मूत्र में जो श्वेतसार (खर) जाता है, वह तथा जलन बन्द होती है। पत्तों को महीन पीस दूध के साथ देने से शोथ में; पत्तों को सुखा कर बीड़ी बनाकर पीने से कफ श्वास में; तथा पत्तों को काली मिर्च के साथ पीसकर लेप करने से ज्वर की सिर पीड़ा में लाभ होता है।

फली–कसैली, शीतल, ग्राही, रूखी, भारी, दोषद्रावक, मलरोधक आध्मानकारक तथा कफ, प्रमेह आदि नाशक है। कफज प्रमेह, व्रण, ज्वर आदि पर उत्तम कार्य करता है। बालकों के बढ़े हुए कफ पर फली को घिसकर शहद के साथ चटाते हैं। कच्ची फली के रस में प्याज का रस और काली मिर्च का चूर्ण मिला सेवन करने से अतिसार व आम में लाभ होता है।

इसके बीजों को सिरके के साथ पीसकर बिच्छू आदि विषैले जानवरों के दंश पर लगाने से शान्ति प्राप्त होती है।

इसके शेष गुण धर्म और प्रयोग लाल कचनार जैसे ही हैं।

यूनानी मतानुसार–

यह सर्द तर है। कोई इसे पहले दर्जे में गरम और तीसरे में खुश्क (रूक्ष) तथा कोई दूसरे दर्जे में गरम और तर बतलाते हैं।

इसकी छाल पाचक है, तथा कफ, पित्त खाँसी और पेट के कीड़ों को नष्ट करती है। जड़ की अन्तर छाल के काढ़े से प्लीहा की पित्त जन्य सूजन और उदर कृमि नष्ट होते हैं। इसके काढ़े से कुल्लियाँ करने से मुख पाक दूर होता है, दाँत मजबूत होते हैं।

पत्तों के चूर्ण से आमातिसार दूर होता है।

आप्टा (झिंझा) कचनार भेद

Bauhinia Recemosa Lan.

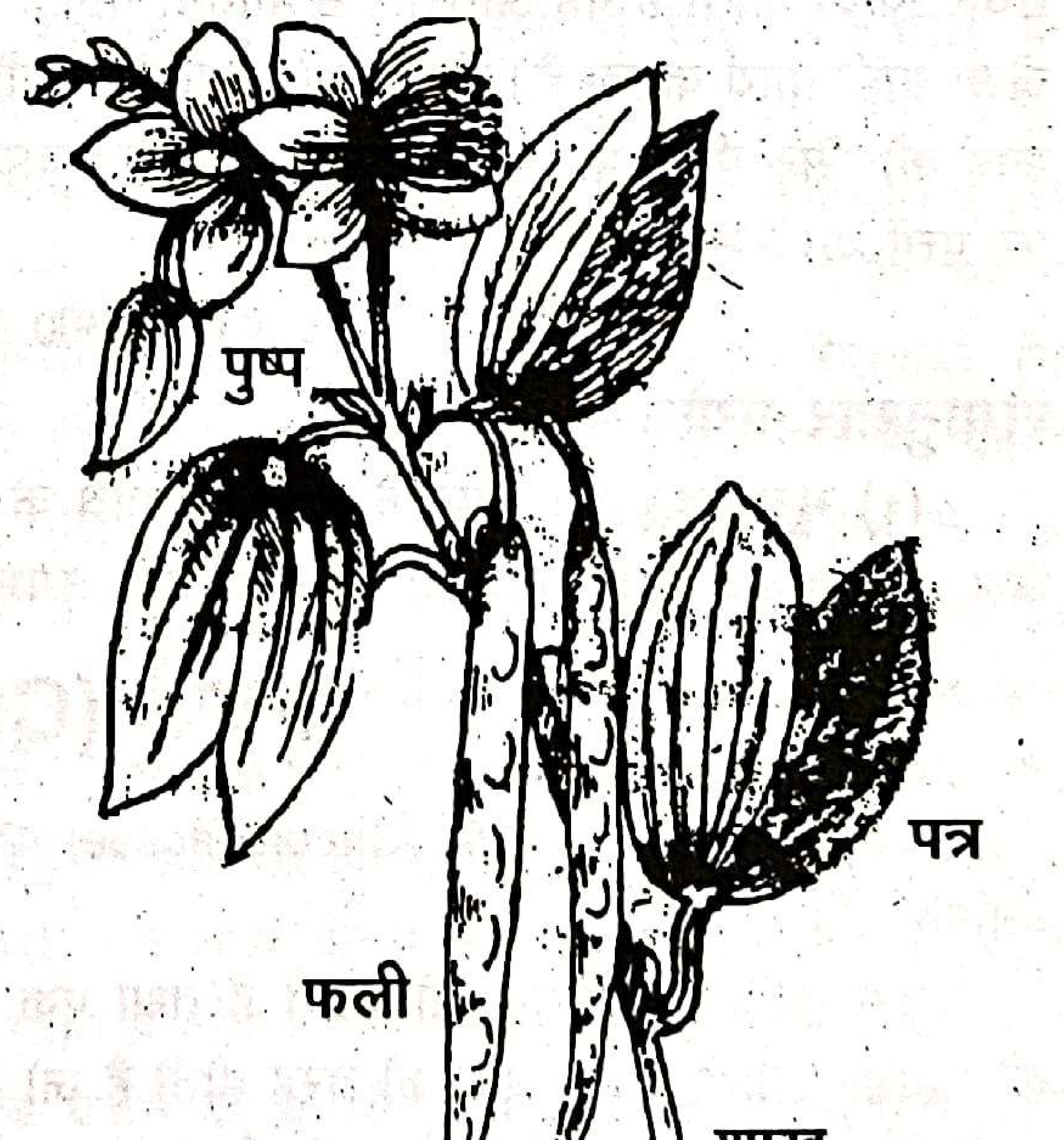

फूल– मूत्राशय की ठण्ड को दूर करते, भूख को बढ़ाते, आंखों के विकारों को दूर कर रोशनी को बढ़ाते, दस्तों को रोकते, बवासीर के खून को और स्त्री के

अत्यार्तव को रोकते हैं तथा पित्त रक्तदोष, विष, प्लीहोदर, प्रमेह, अजीर्ण कफ आदि नाशक हैं। ये मादक भी हैं। शराब बनाने के काम आते हैं।

फली— सर्द, खुश्क और मीठी, दीर्घपाकी, संग्राही है, दस्त, वादी, और कफ नाशक हैं, किन्तु पित्त और दमा (श्वास) पैदा करते हैं। इसके चूर्ण से अतिसार में लाभ होता है। (खजाइनुल अदविया)

आधुनिक मतानुसार—

इसमें कषायिन (Tannin) की प्रचुरता है। यह अतिसार नाशक और कृमिघ्न है। इसकी फलियाँ मूत्रल हैं तथा बीज बल्य और बाजीकरण (Aphrodisiae) हैं।

मूल छाल का क्वाथ यकृत शोथ नाशक और कृमिघ्न है। इसके सूखे पत्ते, कलियाँ और फल अतिसार में प्रयोजित होते हैं। बीजों का व्यवहार पौष्टिक, बाजीकरण की दृष्टि से किया जा सकता है। जहरीले जानवरों के दंशजन्य क्षत पर इसके बीजों को सिरके (Vinegar) के साथ पीसकर कल्क रूप (Paste) में लगाने से उत्तम लाभ होता है।

—डा0 नाड़कर्णी (इ0मे0 मेडिका)

इसके पत्तों का रस काली मिर्च और प्याज के रस के साथ अतिसार व आम की दशा में देते हैं, अथवा इसके फूलों को इस दशा में देते हैं।

इसकी छाल को औटा कर जो एक प्रकार का कत्था तैयार किया जाता है वह अतिसार में कायनो नामक कत्था जैसा ग्राही कार्य करता है। इसके कोमल पत्तों को पीसकर ज्वर की सिर पीड़ा पर प्रलेप किया जाता है। वायगोला पर पत्तों का रस कालीमिर्च के साथ देते हैं।

—डा0 देसाई (औ0 संग्रह)

रोगानुसार प्रयोग—

(1) मूत्रकृच्छ्र पर— इसके पत्तों को रात्रि के समय जल में भिगोकर प्रातः रोगी की अवस्थानुसार लगभग दो तोला तक उसका रस निकाल कर उसमें समभाग दूध और शक्कर या मिश्री मिला पिलावें। इस प्रकार दिन में 4 बार पिलावें। शीघ्र लाभ होता है। इस प्रयोग से मूत्र साफ होने लगता है। उसका गंदलापन, श्वेतसार आदि दूर हो जाता है। पत्तों का रस सहज नहीं निकलता अतः उन्हें पानी में भिगोना पड़ता है, या पानी डालकर पीसना पड़ता है।

(2) कष्ट प्रसव पर— प्रसवकाल में बालक शीघ्र बाहर न निकलता हो तो इसके वृक्ष को प्रमाण कर जिसका उपनयन न हुआ हो ऐसे किसी लड़के के द्वारा या कुमारी कन्या के द्वारा वृक्ष के पत्ते तुड़वाकर उन्हें उस स्त्री के शरीर पर ऊपर से नीचे की ओर फेरने मात्र से शीघ्र प्रसव होता है। ऐसा कहा जाता है।

—वैद्य अप्पा शास्त्री साठे (घरगुती औषधि)

अथवा किसी छोटे बालक को नग्न कर स्नान करावें, फिर वह इस वृक्ष की छाल को अपने दाँतों से निकालकर तैसे ही मुख में धारण किये हुए उस स्त्री के पास जाकर उसके मस्तक पर छाल को थूक देवे। शीघ्र प्रसव होता है।

—वैद्य शं0 दा शास्त्री पदे (ब0 गुणादर्श)

नोट— बिच्छू के दंश तथा भूत बाधा आदि पर इसके कई तान्त्रिक प्रयोग हैं जो विस्तार भय से यहाँ नहीं लिखे जा सकते।

(3) श्वेत प्रदर पर— इस वृक्ष के तने की छाल 1 से 3 माशे तक लेकर शीतल जल के साथ पीस छान कर सेवन कराने से लाभ होता है।

(4) वात गुल्म और शूल पर— इसके पत्र रस 1 से 2 तोला में कालीमिर्च का चूर्ण 4 रत्ती से 1 माशा तक और 7 बूंद तिल तेल मिला पिलावें।

नोट— गण्डमाला, गलगण्ड, ग्रन्थि तथा व्रण आदि पर इसके प्रयोग लाल कचनार के समान ही हैं।

कचरी (Cucumis Dudain)

यह कर्कटी या त्रपुष (Cucurbitaceae) वर्ग की बनौषधि है।

इसे कहीं कहीं ऐरालु भी कहते हैं तथा एक प्रकार की पहाड़ी ककड़ी जो तरबूज की तरह होती है जो कुमायूँ से सिक्किम तक प्राप्त होती है, उसे भी ऐरालु कहते हैं।

यह ककड़ी की ही जाति की एक बेल है जो वर्षा ऋतु में स्वयं विशेषतः खरीफ की फसल के खेतों में पैदा होकर बढ़ती, फूलती और फलती है। बीच खेत में पैदा होने पर किसान लोग इसे उखाड़ कर फेंक देते हैं। कारण यह फसल को नुकसान पहुँचाती है। खेत के बाजू से मेंड़ों पर यह फूलती फलती रहती है। कड़ुबी और मीठी के भेद से, बड़ी और छोटी के भेद से या लम्बी व गोल फलवाली के भेद से यह कई प्रकार की होती है। इनमें से छोटे से छोटे चने जैसी फलवाली जो कचरी होती है जिसे हिन्दी में अगमकी 'चिराटी' बिलारी आदि तथा कहीं कहीं ग्वाल ककरी भी कहते हैं। वह इस कचरी से भिन्न है। उसका वर्णन 'चिराटी' के प्रकरण में देखिये।

कचरी की बड़ी जाति को या बड़े बड़े फल वाली

कचरिया को 'गोपाल ककड़ी' कहते हैं। यह 4 या 5 अंगुल तक लम्बी, कच्ची दशा में कडुवी और पकने पर कुछ खटास स्वाद वाली हो जाती है। इसे कहीं कहीं रामपेंहटा भी कहते हैं। कोई इसके कच्चे फल को सेंधा और पक कर सूख जाने पर या काटकर सुखाने पर कचरी कहते हैं। कहीं कहीं प्रायः कच्चे फलों को काटकर सुखाये गये टुकड़ों को ही 'कचरी' नाम से पुकारा जाता है।

उक्त प्रकार से शुष्क टुकड़ों को या कचरी को भून कर साग बनाई जाती है। अचार भी रक्खा जाता है। जयपुर आदि मारवाड़ के प्रदेशों में कचरी बहुत होती है तथा इसके साग आदि का वहाँ बहुत प्रचार है। जयपुर की कचरी बहुत प्रख्यात है। वह अधिक खट्‌टी तथा कम कडुवी होती है।

मरुदेश (मारवाड़) में यह अत्यधिक होने से "मरुजा" कहाती है। गोपाल (ग्वाले) इसे बहुत खाया करते हैं अतः गोपाल ककड़ी (कर्कटी) इसे कहते हैं।

एक सफेद कचरी होती है, जो ऊपर से श्वेत और इसका रस भी दूध जैसा सफेद निकलता है। इसे धेनुदुग्धा और गोरक्षा–'कर्कटी (गोरख ककड़ी) कहते हैं। इसे गाय अधिक खाती हैं।

एक चित्र विचित्र रेखा युक्त फलवाली और स्वाद में खट मीठी कचरी होती है। इसे विचित्र फला, रोचन फला कहते हैं।

छोटी इन्द्रायन के एक भेद को भी कचरी (पिंहठा) कहते हैं।

बंगाल की ओर कचुगाछ नाम का जो एक पौधा है (जिसकी जड़ में कन्द होता है) उसी की जात का एक क्षुप बंगदेश और चट्‌टग्राम में पैदा होता है। इस क्षुप को देशी भाषा में "कचिरी" कहते हैं। यह नदी तालाबों और जलाशय के किनारे बहुत होता है। ध्यान रहे यह प्रस्तुत 'कचरी' से एकदम भिन्न है। तैसे ही कंचरी या कांचरी नामक एक भिन्न वनौषधि होती है, जिसे काश्मीर में 'वादावंद कहते हैं।

नाम–

संस्कृत–चिर्भटं, चित्रफला, मृगाक्षी, मृगेर्व्वारु

हिन्दी– कचरी, कचरिया, सेंध, पेंहटा, भकुर, गोरख ककड़ी, गुराड़ी। मारवाड़ी–काचरी, सेंध

पंजाबी–चिम्भड़

मराठी– चिमूड़, रोंराड़, रौंदणी, टकमके

गुर्जर––चिभड़ो, कोटीर्वा गोठभड़ी, काचरां

बगला–बनगोमुक, कुन्दुरुकी, काकुड़, फुटी

अंग्रेजी– कुकुंम्बर प्युवेसेंट (Cucumber Pubescent), ककुंम्बर स्माल (Cucumber Pubacent Small)

लेटिन– क्युक्युमिस डुडेम,

,, प्युबेसेन्स्ट (Cucumis Pubescenst)

,, मेक्युलाटा (C. Maculata)

,, नेड्रास पटामस (C. Nadras Patamus)

उत्पत्ति स्थान–

यह प्रायः समस्त भारतवर्ष के खेतों और पहाड़ी स्थानों में होती है। विशेषतः राजपूताना, उत्तर प्रदेश, पंजाब आदि प्रदेशों में अधिक पैदा होती है।

विवरण–

इसकी बेल खीरे की बेल जैसी, किन्तु उससे लम्बाई में छोटी लगभग 5 या 6 हाथ लम्बी होती है। यह वर्षाकाल में प्रायः स्वयं पैदा होती है, कहीं कहीं बोई भी जाती है। इसकी शाखायें खीरे की शाखा जैसी ही पतली तथा कांटेदार रोवों से व्याप्त होती हैं।

पत्ते– छोटे 4 इंच तक लम्बे और 6 इंच तक चौड़े, नरम या कोमल होते हैं। आकार प्रकार में ककड़ी पत्र जैसे ही होते हैं।

फूल– फूल भी ककड़ी के फूल जैसे ही किन्तु कुछ छोटे पीले रंग के होते हैं।

फल– प्रायः भाद्रपद मास में छोटे लंबे गोल या अण्डाकार फल लगते हैं। ये 1 से 2।। इंच लम्बे, कोई कोई इससे भी बड़े 4 या 5 अंगुल तक लम्बे होते हैं। इन फलों को ही कचरी कहते हैं। कच्ची दशा में ये हरे रंग के या हरियाली लिये हुए सफेद रंग के अर्थात् चितकबरे रंग के हरे पीले पट्‌टेदार तथा अत्यन्त कडुवे होते हैं। पकने पर ये पीले पड़ जाते हैं। किसी किसी पर लम्बाई के रुख हरी रेखायें होती हैं तथा स्वाद में खटमीठे होते जाते हैं। मीठी जाति के फल कच्ची दशा में ककड़ी के समान मीठे होते हैं। और पकने पर कुछ खटास युक्त हो जाते हैं। पकी हुई या अधपकी हुई कचरी में बड़ी मीठी सुगन्ध आती है। अतः कई लोग केवल सुगन्ध के लिये ही इसे अपने पास रखते हैं और बार बार सूंघते रहते हैं। कहा जाता है कि एक प्रकार की कचरी ऐसी मनमोहक सुगन्धयुक्त होती है कि हिरन उसमें आसक्त होकर उसकी बेल के चारों ओर मंडराया करते हैं।

बीज–खीरे के बीज जैसे, किन्तु अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। पके बीज का छिलका कुछ काला सा हो जाता है

और अन्दर की गिरी पीताभ श्वेत रंग की होती है। कच्चे बीज बहुत कडुवे होते हैं किन्तु पकने पर कुछ खट्टे हो जाते हैं।

गुणधर्म–

आयुर्वेदीय मतानुसार–

छोटी कचरी– चरपरी, कडुवी, दीपन, रोचक, पाक में अम्ल, वातपित्त और पीनसरोग नाशक है। परिपक्व दशा में गरम और पित्तकारक है।

बड़ी कचरी– कच्ची दशा में भेदक, स्वादु, लघु, उष्ण, अग्निदीपक रोचक और पित्तनाशक है। परिपक्व में मधुर, तृप्तिकारक, हृदय को हितकारी, दाह, शोषनाशक है।

सफेद कचरी– मधुर, रूख, भारी, कफ-पित्तनाशक, ग्राही, मलस्तम्भक, शीतल तथा मूत्रकृच्छ्र, दाह, प्रमेह आदि नाशक है। कच्ची दशा में कुछ खटासयुक्त कडुवी, पाक में दीपन, वात प्रकोपक, अभिष्यन्दी और कफ पित्त नाशक है।

सुखाई हुई कचरी– रुखी, रुचिकारक, दीपन, भेदक, शीतल तथा अरुचि, जड़ता, कृमि, कंडु और ज्वरनाशक है।

नोट– प्रायः सर्व प्रकार की कचरियां वातकफकारक, स्वादु (स्वादिष्ट) और शीतल हैं। कच्ची कचरी का साग अतिसार में उपयोगी होता है। कचरी की जड़ में अश्मरी (पथरी) नाशक अपूर्व गुण हैं। इसका फूल त्रिदोषनाशक होता है। कचरियां तमाखू पीने वालों को हितकारी हैं।

यूनानी मतानुसार–

यह दूसरे दर्जे में गर्म और खुश्क है। यह मधुर, गर्म, हल्की, कोठे को मुलायम करने वाली, भूख बढ़ाने वाली, कामोद्दीपक (बाजीकर) तथा बवासीर, अर्द्धांग पक्षाघात आदि वातरोगों को और कफ के रोगों को आराम करती है। वात रोगों पर यह सोंठ के साथ दी जाती है। इसमें सुगन्ध होती है अतः यह दिल और दिमाग को ताकत पहुँचाती है। दीपन–पाचन चूर्णों में यह प्रायः मिलाई जाती है। किसी किसी को यह शीघ्र कब्जी पैदाकर ज्वरग्रस्त बना देती है। (यह बात मेरे भी अनुभव में आई है– लेखक)। पक्की या कच्ची कचरी पेशाब को बढ़ाती है। इसे कुछ दिन सेवन करने से पथरी टूट–फूटकर निकल जाती है (यह बात संशयास्पद है, इसकी जड़ में यह गुण है, न कि फल में। –लेखक

कचरी को गोश्त के साथ मिलाकर पकाने से यह उसे शीघ्र गला देती है और उसे सुगन्धित कर देती है। दाल बगैरहों में प्रायः पाचनार्थ और वातनाशार्थ इसे डालते हैं। इसकी धूनी बवासीर में बहुत लाभकारी है। इसका छिलका जल्दी हजम नहीं होता।

कचरी उष्ण प्रकृति वालों को हानिकारक होती है, सिर दर्द पैदा कर देती है। ऐसी दशा में धनियां या दही का सेवन कराना चाहिए। ये इसके दर्पघ्न हैं। इसके प्रतिनिधि–अंजीर, अण्डखर्बूजा आदि हैं। इसकी मात्रा 4½ माशे तक है।

प्रयोग–

(1) अश्मरी (पथरी) पर– इसकी जड़ 1 तोला तक लेकर जौकुट पर रात्रि के समय 10 तोले पानी में भिगोकर प्रातः अच्छी तरह उसी जल में पीस छानकर पिला दें। नित्य एक बार इसी प्रकार पिलाने से 7 दिन में लाभ होता है। यदि पिलाते समय उसमें 1 या 2 माशे तक जवाखार मिला दिया जाय तो और शीघ्र लाभ होता है। इस कार्य के लिये बड़ी कचरी (गोरख कचरी की जड़ लेनी चाहिये।

(2) मूत्रकृच्छ्र पर– बड़ी कचरी के बीज 6 माशे तक लेकर चावल के धोवन के साथ पीस छानकर तथा उसमें थोड़ा लाल चन्दन घिसकर पिलाने से लाभ होता है।

(3) वातज उदर शूल पर– छोटी या बड़ी कचरी का चूर्ण 2 से 4½ माशे तक लेकर उसे 5 तोले तक उष्ण जल में मिलाकर पीने से लाभ होता है।

कचलोरा (Pithecolobium Bigeminum)

इस शिम्बी वर्ग (Leguminosae) की वनौषधि का उल्लेख आयुर्वेदिक या यूनानी निघण्टुओं में नहीं मिलता।

कर्नल कीर्तिकर, मेजर बसु, कर्नल चोपड़ा आदि आधुनिक वनौषधि शोधकों ने इसका संक्षिप्त वर्णन अपने अपने ग्रन्थों में किया है।

हिन्दी में कहीं कहीं इसे 'कचोरा' भी कहते हैं, किन्तु ध्यान रहे प्रसिद्ध औषध कचूर या कचोरा इससे एकदम भिन्न हैं।

एक 'कचलू' नामक अन्य पेड़ होता है, जो जमुना के पूर्व दिशा में, हिमालय पर पाँच से लेकर 9 हजार फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है। यह पेड़ देखने में बहुत सुन्दर दिखलाई देता है। पत्तों के भेद से इसकी कई जातियाँ हैं। इसके गुणधर्म अज्ञात हैं। केवल प्रसंगवश इसकी सूचना यहाँ कर दी गई है। 'कचालु' धुइयाँ (अरवी)

का एक भेद है।

नाम–

हिन्दी– कचलोरा, कचोरा।

बरमी– दर्नापंथी, दनपिन्थि।

लेटिन– पायथेकोलोबियम बायगेमिनम।

मिसोसा लुसिड़ा (Mimosa Lucida)

उत्पत्ति स्थान–

गंगा नदी से पूर्व की ओर, अर्थात् पूर्वी हिमालय की तलैटी के जंगलों में तथा दक्षिण के पश्चिमी घाट, कोकण और मद्रास प्रान्त के जंगलों में यह वनौषधि बहुतायत से पैदा होती है।

विवरण–

इसका पेड़ मध्य श्रेणी का विशेष ऊँचा नहीं होता है। शाखायें बहुत कम होती हैं। पत्ते बड़े मुलायम, किन्तु तीखी नोंक वाले तथा कचनार के पत्र जैसे दो भागों में विभक्त होते हैं।

फूल– पत्रकोण से निकली हुई पुष्प डण्डी बड़ी कोमल होती है और उस पर छोटे–छोटे पीताभ श्वेत और कुछ लाल रंग के पुष्पों के गुच्छे लगते हैं। पुष्पों में कोई विशेष गन्ध नहीं होती है।

फली– लाल तथा कुछ बादामी रंग की, चपटी एक या दो अंगुल तक लम्बी होती है। फली के भीतर 5 से लेकर 8 तक बीज, सिरस के बीज जैसे किन्तु आकार में कुछ बड़े चिपटे चक्राकार होते हैं।

गुणधर्म–

यह कुष्ठ और मधुमेहनाशक है। कुष्ठ रोग में इसके पत्तों का काढ़ा पिलाया जाता है तथा ऊपर से व्रणों में लगाया, लेप किया जाता है। उत्तम लाभकारी है।

पत्तों का काढ़ा सिर के बालों पर लगाने से वे खूब बढ़ने लग जाते हैं।

बरमा में इसके बीजों का प्रयोग मधुमेह रोग को मिटाने के लिये किया जाता है।

इसमें एक प्रकार का विरेचक गुण प्रधान क्षार पाया जाता है, जो आंतों को लाभ पहुँचाता है। अपने प्रभाव से आंत्रस्थित दूषित वायु को निकाल कर उसे साफ कर देता है। शरीर के दोषों को यह श्वास और मूत्रमार्ग द्वारा बाहर निकाल देता है। किन्तु हृदय पर इसका विष जैसा अनिष्ट असर होता है।

कचूर (Curcuma Zedoaria)

यह हारिद्रवर्ग (Scitamineae) की एक वनौषधि है। वर्ग का वर्णन हल्दी के प्रकरण में देखिये।

आयुर्वेदीय निघन्टुकारों ने इसे कर्पूरादि वर्ग में; तथा किसी-किसी ने पिप्पल्यादि वर्ग में इसे लिखा है।

आयुर्वेदीय ग्रन्थों में कचूर का स्वतंत्र प्रयोग नहीं मिलता।* चरक के हिक्का और श्वास निग्रहकारी दस औषधियों में जो 'शटी' नाम आया है, वह इसी कचूर का है। शट्यादि चूर्ण, शट्यादि क्वाथ, घृत आदि जितने प्रयोगों में 'शटी' नामक द्रव्य की योजना की गई है, वह कचूर ही है। कई महानुभाव 'शटी' नाम से 'कपूर-कचरी' का आग्रह करते हैं। चरक सू० स्थान अ0 27 में गुणधर्म दर्शाया गया है।

इन दोनों के पर्यायवाची शब्दों में 'शटी' शब्द लिख कर इस विवादास्पद् प्रश्न को खड़ाकर दिया है कि क्या ये दोनों एक ही हैं या भिन्न–भिन्न ?

हमारे विचार से ये दोनों एक ही वर्ग के होने तथा दोनों (केवल दोनों ही नहीं इनके, नरकचूर आदि जो भेद हैं उनकी भी) की जड़ों में 'शटा' अर्थात् जटा सदृश कुछ भाग होने से इनके पर्यायवाची शब्दों में 'शटी' शब्द की योजना की गई। इनके गुणधर्मों में भी बहुत कुछ समानता पाई जाती है, तथा एक के अभाव में दूसरे को लिया जा सकता है। तथापि ये भिन्न–भिन्न हैं। कचूर का पौधा क्षुप रूप में होता है। कपूर कचरी का कुछ लतारूप में होता है। इनके उत्पत्ति स्थान भिन्न–भिन्न हैं। कचूर के पत्तों में कालापन होता है, तथा इसी से यह 'काली हल्दी' कहाता हैं। कपूर कचरी के पत्तों में कालापन नहीं होता, किन्तु इसे 'छोटा कचूर' कहीं–कहीं कहते हैं। आगे कपूर–कचरी का प्रकरण देखिये।

कोई कोई कचूर को 'वन हल्दी' कहते हैं। किन्तु वास्तव में वनहल्दी इससे भिन्न है। यद्यपि दोनों एक ही वर्ग की एवं क्षुप जाति की हैं तथा गुण धर्म में भी साम्य है। तथापि दोनों की जड़ों में, रंगों में, रुचि और गन्ध में भिन्नता है। जंगली हल्दी का प्रकरण देखिये।

कचूर को एकांगी या मुरामाँसी कहना भी भूल है। मुरामांसी कपूर-कचरी का एक भेद है। इसके लिये मुरामाँसी का प्रकरण देखिये।

कचूर को कई लोग 'नरकचूर' कहते हैं। किन्तु

*चरक सू0 अ0 4 देखिए।

वस्तुतः 'नरकचूर' यह कचूर की एक बड़ी जाति का नाम है। लेटिन में इसे Zingiber Zerumbel कहते हैं।

कचूर
Curcumazedoaria Rose

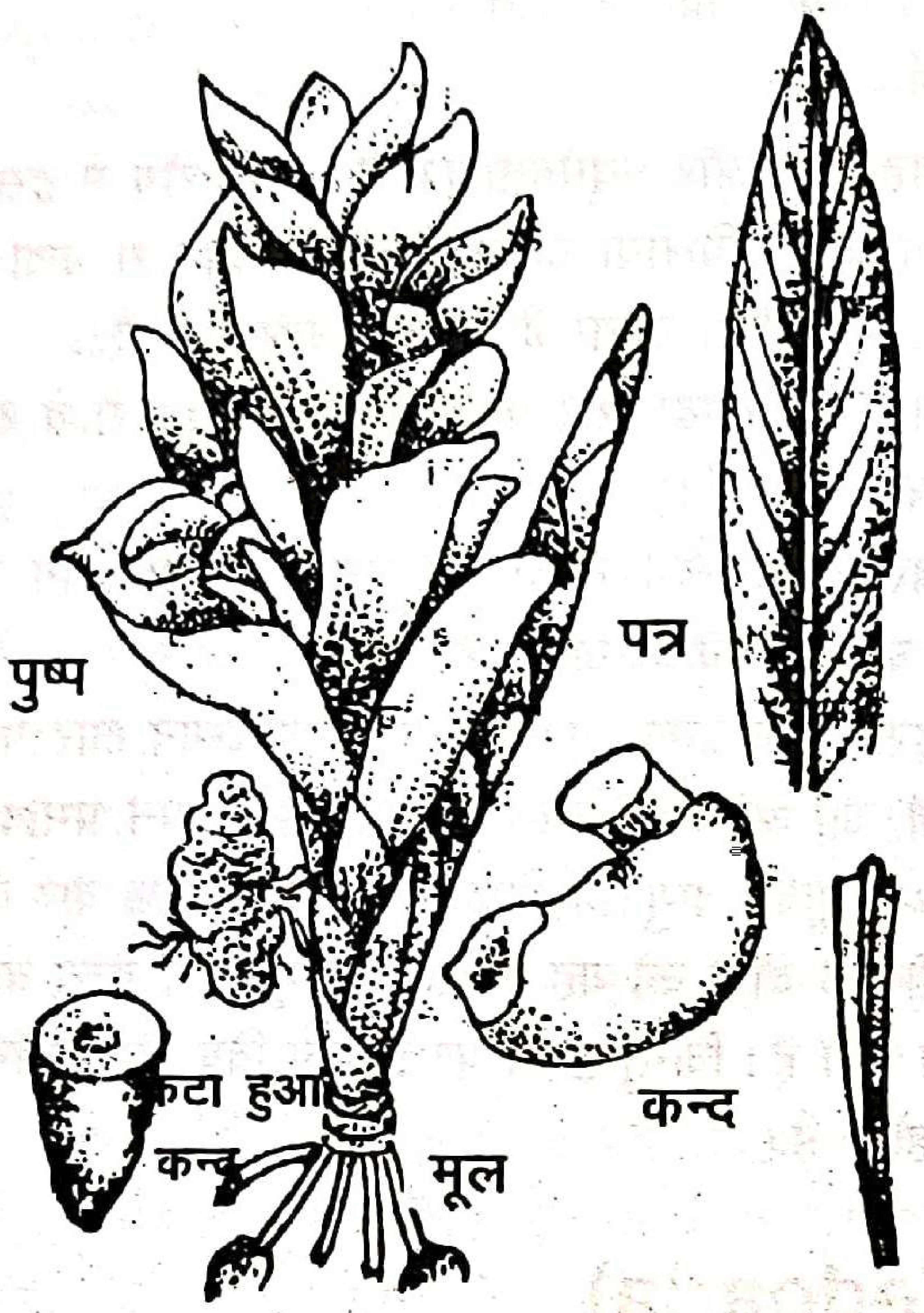

कचोरा नाम का एक शालिधान्य भी होता है। वह पित्त दोष नाशक माना गया है।

कचोर या कचोरा, कचलोरा पेड़ को भी कहते हैं।देखिये पीछे 'कचलोरा' का प्रकरण।

नाम–

संस्कृत– कर्चूर, गंधमूल, वेधमुख्य, द्राविड़, शटी
हिन्दी–कचूर, कालीहल्दी, आम आदा
मराठी–कचोर, नरकचोरा, काचरी
गुर्जर–काचूर, षटकचूरो, कबूरी
बंगला–कोचूर, गन्धशटी, शोरीकोचूर
अंग्रेजी–लांग झेडोआरि (Long Zedoary)
लेटिन– कर्क्युमा झेडोरिया अमोमम झेरम्बेर
कर्क्युमा झेरम्बट (C. Zerumbet)
कर्क्युमा सीसिया (C. Saesia)

उत्पत्ति स्थान–

यह पूर्व हिमालय में तथा सिंहलद्वीप और ब्रह्म देश के पश्चिम भाग में स्वयमेव खूब पैदा होती है। कोंकण और बम्बई प्रान्त में कहीं कहीं खेतों में बोई जाती है। जंगल में भी उत्पन्न होती है। हल्दी के खेतों में भी यह हो जाती है।

विवरण–

वर्षा के प्रारम्भ में ही इसके क्षुप उग उठते हैं। इसके पौधे हल्दी के पौधे जैसे ही होते हैं। केवल पत्तों और जड़ों में अन्तर रहता है।

पत्ते– कुछ काले रंग के, एक से दो फुट तक लम्बे डण्ठल की ओर संकुचित, मध्य भाग में चौड़े तथा आगे की ओर क्रमशः सिकुड़ते हुये छोर में अनीदार होते हैं। पत्तों का साग बनाया जाता है, तथा मत्स्यभक्षक लोग इन पत्तों को मछलियों के भूनने में काम लाते हैं।

जड़– इसकी जड़ अनेक गांठों से युक्त होती है। ये गाँठें अदरख की गाँठ जैसे खुरदरी, सफेद वर्ण की, ठोस या जाड़ी होती हैं। गांठ को मध्य भाग से काटने पर भीतर कुछ चक्राकार गोल नीली धारा दिखाई देती है। विशेषतः कपूर कचरी की गाँठ में ये गोलाकार नीली धारायें अधिक प्रमाण में दिखाई देती हैं।

उक्त गाँठ युक्त जड़ों को खोद कर तथा पानी में जोश देकर या वैसे ही कचरा कर सुखा लेते हैं। इसी को कचूर कहते हैं। यह स्वाद में कडुवी, चरपरी कपूर जैसी तथा गन्ध में सौंठकी गन्ध जैसी होती है। इस गाँठ को कूटकर चूर्ण करते समय इसकी महक इलायची की महक जैसी चारों ओर फैलती है। जमीन से खोदने पर ये गाँठें चारों ओर से जटा सदृश तंतुओं से वेष्ठित रहती हैं। इसी से ये शटी कहाती हैं।

ये कचूर की गाँठें शुष्क, कटी हुई सिंहलद्वीप (सीलोन) और चितगांग (ब्रह्मदेश के पश्चिम) से बम्बई के बाजार में बहुतायत से आती हैं। इन गाँठों को उबाल कर सुगन्ध और गुणवर्धनार्थ अचारों में डालते हैं तथा सुगन्ध एवं त्वग्रोगनाशार्थ अन्य द्रव्यों के साथ तेल, उबटन आदि में मिलाते हैं।

पुष्प– इसके फूल प्रायः पत्तों के साथ ही साथ उगते हैं। ये पुष्प नालिकाकार पीले रंग के गुच्छों में लगते हैं। पुष्प के भीतर ही त्रिकोणाकार बीज कोष होता है तथा बीज श्वेत अण्डाकार होते हैं।

किन्तु ध्यान रहे, सब ही कचूर के क्षुपों में पुष्प नहीं आते। एक कचूर के पौधे जैसा ही अन्य पौधा होता है, जिसे महाराष्ट्र में शिलिन्द या 'शिंदोड़ा' कहते हैं। इसके लम्बे, पीले एवं कुछ लाल रंग के सुगन्धयुक्त पुष्प श्रावण मास में खूब लगते हैं, जो देव पूजा के काम में लिये जाते हैं। इसकी जड़ या गाँठ कचूर की गाँठ जैसी ही होती है, किन्तु गुण में उसकी अपेक्षा अधिक उष्ण और स्वाद में विशेष चरपरी होती है। आगे गुणधर्म में इसके विशेष गुणों

का उल्लेख देखिये।

नोट– कचूर के पौधे में फल या फली नहीं लगती। कपूर कचरी में फली लगती है।

गुणधर्म–

आयुर्वेदीय मतानुसार–

रस में यह चरपरा व कडुवा, वीर्य में उष्ण तथा विपाक में कटु (चरपरा) तथा लघु (हलका), दीपन, रुचिकारी, हृद्य (हृदय को हितकारी), मुख को स्वच्छ करने वाला और कफ, वात, प्लीहा, गुल्म, अर्श, कुष्ठ, कास, श्वास, कृमि, हिक्का, गलगण्ड, वात ज्वर, अजीर्ण, अपस्मार, मुख की जड़ता, ब्रण, गण्डमाला, अपचि आदि नाशक है।

यह अपने तिक्त, कटु, लघु, उष्ण गुणों से कफनाशन का कार्य तथा उष्ण वीर्य द्वारा वात शमन का कार्य करता है। किन्तु उष्ण प्रकृति में इसके सेवन से रक्तपित्त प्रकोप होने का भय है। इसी से इसे रक्तपित्त प्रकोपक भी कहा गया है।

अपने सुगन्धयुक्त तिक्त कटु रसों के द्वारा यह मुख और आमाशयान्तर्गत श्लेष्मा को दूर कर पाचक-पित्त की वृद्धि करता है जिससे अग्नि प्रदीप्त होकर क्षुधा बढ़ती है। इस कार्य के लिये इसके चूर्ण का प्रयोग किया जाता है। उक्त प्रकार से मुखान्तर्गत कफ के हट जाने से तथा जठराग्नि के प्रदीप्त होने से जिह्वा में रुचि बढ़ती है, अरोचक का नाश होता है। अग्निमाँद्यजन्य अपान व समान वात की विकृति से पैदा हुये अर्श और गुल्म रोगों में यह इसी प्रकार लाभ पहुँचाता है।

इसके कटु रस और उष्ण वीर्य के कारण अन्नपचन क्रिया एवं आन्त्र में रस शोषण क्रिया यथास्थित होते रहने से स्रोतसों में दोषों को संचित होने का अवसर ही नहीं मिलने पाता। अतः कोष्ठस्थ शूल आदि तथा कफज कृमियों का स्वयमेव नाश हो जाता है। किन्तु इसमें दोष इतना ही है कि इसका कटु विपाक होने के कारण कुछ कोष्ठबद्धता होती है, दस्त साफ नहीं उतरता। अतः इसके साथ अनुलोमक या सारक द्रव्य की योजना आवश्यक होती है।

प्रायः आमकफादि आम द्रव्य पचनमार्ग में या धातुपाक प्रणाली में पैदा होकर फुफ्फुस, कण्ठ, प्राणवह स्रोतस और सिरो भाग में वात के कार्य में रुकावट डालता है, जिससे प्राण व उदानवात का प्रकोप होकर कास, श्वास, हिक्कादि विकारों का प्रादुर्भाव होता है। ऐसी दशा में कचूर या इसके समान ही अग्नि को दीपन करने वाली तथा उरः स्थान में यथा योग्य कार्य करने वाली औषधियों की योजना करनी पड़ती है जो आमरस का निर्माण ही न होने देवें और यदि हो गया हो तो उसके पाचन में पूर्णतया समर्थ हो। ऐसे द्रव्यों के प्रभाव से आम कफ का नाश होकर वात का योग्य विधि से संचरण होने लगता है तथा प्राण व उदान का अनुलोमन होने से कफ, श्वास, हिक्का आदि प्राणान्तक व्याधियां शान्त हो जाती हैं। फिर वे अपना सिर नहीं उठा सकतीं। इसलिए चरक ने श्वास और हिक्काहर औषधि पाठ में कचूर को यथा योग्य स्थान दिया है। कास, श्वास और हिक्का में इसके चूर्ण को शहद के साथ बार-बार चटाते हैं।

कचूर कफ नाशक होने से क्लेद प्रधान कुष्ठ और व्रणों में इसका प्रयोग लाभदायक होता है। इसके वस्त्रपूत महीन चूर्ण को बिगड़े हुए व्रणों में बुरकने या भर देने से ब्रणान्तर्गत कृमियुक्त दुर्गन्ध नष्ट होकर शुद्धि हो जाती है।

कचूर को नित्य प्रातः उठते ही मुख में चबाकर थूकने और गर्म जल से कुल्ले करने से लालास्राव, मुख विरसता, मुख जाड्य आदि का नाश होता है।

इसके रस या क्वाथ को पिलाने से, तथा इसकी गाँठों की माला बना बच्चों के कण्ठ भाग में धारण कराने से कृमि व्याधि दूर होती है।

इसके प्रयोग से हाथ की हथेली और पैरों के तलवों की जलन दूर होती है। कपूर कचरी के अभाव में इसे जल के साथ पीसकर सिर के बालों पर लगाने से केश वृद्धि होती है तथा जूँ, लीख आदि नष्ट होते हैं।

शिलिन्द नामक कचूर के कन्द के क्वाथ या चूर्ण शहद के साथ सेवन से खाँसी में; कन्द को जल के साथ पीसकर पीने से कामला में; कन्द के क्वाथ में मधु मिलाकर सेवन से ज्वर में; और कन्द को घृत में घिस कर नेत्रों में आँजने से फूला, जाला, माड़ा आदि नेत्ररोगों में लाभ होता है।

कचूर को पाक में मिलाकर या वैसे ही सेवन करने से स्त्री की प्रसूतिजन्य दौर्बल्य और उदरशूल में; कचूर के साथ छोटी पीपल और दालचीनी मिला क्वाथ सिद्ध कर शहद मिश्रण कर सेवन से प्रतिश्याय (जुखाम) में; कचूर के साथ कालीमिर्च, मुलहठी और मिश्री को औटा कर पिलाने से श्वासनली के रोगों (कास, श्वास आदि) में; विशेष लाभ होता है। कचूर को फिटकरी के साथ पानी में पीस लेप करने से चोट और मोच में; तथा केवल इसके ही लेप करने से शरीर की वातपीड़ा में लाभ होता है।

यूंनानी मतानुसार–

यह दूसरे दर्जे में गर्म और खुश्क है। जोश को पैदा

करता, हृदय, मस्तिष्क व मेदा को ताकत देता, भूख बढ़ाता, रुकावटों को खोलता, काम शक्ति को और चरबी को बढ़ाता, मूत्रल, आर्तव प्रवर्तक तथा वमन, अतिसार, हृदय की धड़कन, कफ की खांसी, बालकों की प्रवाहिका पांडु आदि का नाशक है। यह विषैले जानवरों के विष को दूर करता है।

चेहरे पर इसका लेप करने से मुँहासे नष्ट होते हैं। मुख में रखने से दाँतों के दर्द को दूर करता, चबाने से सर्द व तर खांसी को तथा लहसुन व प्याज की दुर्गन्ध को दूर करता है। वात कफ की सूजन पर इसके प्रलेप से सूजन उतरती है, दर्द मिटता है। कोई कोई इसे दस्तावर कहते हैं। इसके एक बड़े टुकड़े को कमर में बांध रखने से वीर्य स्खलन नहीं होता, स्तम्भन होता है। काम-शक्ति बढ़ती है।

हानिकर्ता—यह दिमाग, हृदय और फुफ्फुस को हानि पहुँचाता है, सिर दर्द पैदा करता है। इसके हानिनिवारक धनियां, बनफसा, सफेद चन्दन और जटामाँसी हैं। इनके प्रतिनिधि अंजीर और अदरख हैं। इसकी मात्रा—3 माशे से 7 माशे तक है। इसकी शक्ति 3 वर्ष तक कायम रहती है।

आधुनिक मतानुसार—

इसमें एक प्रकार का सारभूत (Essential) तैल (जो पीताभ श्वेत, चिपचिपा, कपूर जैसा गन्ध व स्वाद युक्त होता है) तथा एक कडुवा मुलायम राल, सेन्द्रियक्षार (Organic acids), गोंद, श्वेतसार (Starch), शर्करा, कर्कशतन्तु (Crude Fibre), राख, अल्ब्युमिनाइड्स, कर्क्युमीन अरबिन्स (Curcumin arabins) आदि पाये जाते हैं।

यह उत्तेजक, कोष्ठ वात प्रशमन, श्लेष्मनिस्सारक मृदुकर (Demulcent), मूत्रल, और शोणितोत्क्लेशक (Rubefacient) है।

इसकी जड़ में सुहावनी कपूर जैसी गन्ध आती है। यह अफरा, अजीर्ण तथा दस्तावर औषधियों के मरोड़े आदि दोषों के निवारणार्थ उपयोगी है। मुख के अन्दर की चिपचिपाहट को दूर करने के लिये तथा विशेषतः गायक लोग कण्ठ शुद्धि के लिये इसे चबाते हैं। इसका उपयोग कण्ठ क्षोम की दशा में और वातनलिका (Wind-pipe) के उर्ध्वभाग के प्रदाह में भी किया जाता है। शीत और ज्वर की दशा में कफ तथा पित्तजन्य कास (Bronchitis) के निवारणार्थ या शमनार्थ इसकी योजना क्वाथ रूप में पीपल, दालचीनी, मुलैठी, शहद और मिश्री के साथ की जाती है। इसके चूर्ण को उबटन रूप से शरीर पर तथा फिटकरी मिलाकर इसे चोट पर लगाते हैं। अशुद्ध या विकृत रक्त के कारण हुये चरकालीन चर्मरोगों के निवारणार्थ जो सौन्दर्यबर्धक प्रयोग बनाये जाते हैं। उनमें सुगंधित द्रव्य के रूप में इसकी योजना की जाती है। इसकी ताजी जड़ का प्रयोग श्वेत प्रदर और सुजाकजन्य प्रस्राव को रोकता है। मृदुकर या स्निग्धता संपादक, श्लेष्मनिस्सारक और सुगन्ध गुणों के लिये इसकी मात्रा 1 ड्राम (3 रत्ती 6 रत्ती) की है।

बालकों के कृमिरोग पर इसके कन्द का स्वरस दिया जाता है। यह प्रायः अन्य औषधियों के साथ व्यवहार में लाया जाता है तथा औषधीय तेलों के निर्माण कार्य में प्रयुक्त होता है। इसकी पत्ती का स्वरस जलोदर में दिया जाता है।

इसकी शुष्क जड़ के साथ पतंग (Caesalpinia Sappan) की लकड़ी का चूर्ण मिश्रण करने से एक प्रकार का लाल चूर्ण तैयार होता है जिसे अबीर कहते हैं। होली के अवसर पर इसे पानी में घोलकर शरीर पर छिड़कते हैं।

—डा0 नाडकर्णी (इं0मे0 मेडिका)

यह वातहर और मूत्रजनन है। प्रसवावस्था में स्त्री को इसके ताजे कन्दों का पाक दिया जाता है। शीत से अंग वेदना की दशा में तथा विषम ज्वर में इसके साथ पीपल और दालचीनी मिला क्वाथ सिद्ध कर शहद मिला सेवन कराते हैं तथा इसे पीसकर शरीर पर लेप करते हैं। सुजाक में मूत्र साफ होने तथा वेदना नाशार्थ इसका फांट दिया जाता है। उदर रोग में इसके पत्तों का रस देते हैं।

—डा0 देसाई (औ0 संग्रह)

कम्बोडिया में इसकी जड़ उत्तेजक, पौष्टिक और शोधित मानी जाती है। सिर के चक्कर में यह विशेष लाभ पहुँचाने वाली है। बेचैनी और भ्रम (सिर के चक्कर) में इसका अर्क उपयोग में लेते हैं। प्रसूति के पश्चात् लगभग 14 दिन तक दिन में 3 बार इसे प्रसूता स्त्री को दिया जाता है। आक्षेपक से पीड़ित बच्चों के शरीर पर माताएँ इसकी जड़ को चबाकर लगाती हैं। —डा0 रीड़

सिद्ध साधित प्रयोग—

(1) कर्चूरादि चूर्ण— कचूर के साथ भुईं आमला, सोंठ मिर्च और पीपल को समभाग कूट पीसकर चूर्ण बना रक्खें।

मात्रा— 1½ माशा चूर्ण, गुड़ और घृत (गुड़ व घृत 6–6 माशे) के साथमिला सेवन करने से घोर प्रतिश्याय (जुखाम), पार्श्व पीड़ा, हृदय शूल और शट शूल का नाश होता है।

'आदि' चूर्ण के अन्य प्रयोगों को ग्रन्थों में देखिए।

(2) कचूर क्वाथ— कचूर 2 तोला जौकुटकर 1 सेर जल में अष्टमाँश क्वाथ सिद्ध करें।

मात्रा— 2½ तोला से 5 तोला तक प्रातः सायं थोड़ी शक्कर और शहद मिला सेवन करने से वमन, क्षुधामांद्य, ज्वर, श्रम आदि से लाभ होता है।

कर्चुरादि क्वाथ— शटयादि गण* के द्रव्य कचूर, पोखरमूल, कटेली, काकड़ासिंगी, धमासा, गिलोय, सोंठ, पाठा, चिरायता और कुटकी समान भाग लेकर क्वाथ सिद्ध करें। इसके सेवन से सन्निपात ज्वर, खाँसी, हृदय की जकड़न, पसली की पीड़ा, श्वांस और तन्द्रा नष्ट होती है।

नोट— शटयादि क्वाथ, गुटिका और घृत के प्रयोगों को शास्त्रों में देखिये। कचूर का मुरब्बा–शर्बत आदि भी बनाये जाते हैं।

रोगानुसार प्रयोग—

(1) कास, श्वांस और हिक्का पर— कचूर के साथ अतीस, नागरमोथा, काकड़ासिंगी, हरड़, सोंठ, हींग (भुनी हुई) और सैंधानमक समभाग लेकर चूर्ण बनावें। इस चूर्ण को तक्र (छाछ) में मिला चाटने योग्य लेह तैयार कर लें। यह लेह नित्य प्रातः तैयार कर थोड़ा-थोड़ा दिन में 4 या 5 बार चाटने से कफ की खांसी दूर होती है। साधारण कास तो कचूर के टुकड़े को मुख में रखकर चूसते रहने से ही दूर हो जाती है।

कचूर के साथ सुगन्धवाला, कटेली की जड़ और सोंठ समभाग लेकर अष्टमांश क्वाथ सिद्धकर खांड़ और घृत के साथ पीने से पित्तज खांसी नष्ट होती है।

श्वास और हिक्का पर— कचूर के साथ भुई आंवला, भारंगी, शंखपुष्पी, सुगन्धवाला और पोखरमूल 1–1 भाग तथा खाँड 8 भाग लेकर चूर्ण बनावें।

मात्रा— 1 से 4 माशे तक शहद के साथ सेवन से लाभ होता है।

उक्त प्रयोग में शंखपुष्पी और भारंगी के स्थान में कमलकन्द, दालचीनी, तथा नागरमोथा, तुलसी की जड़, पीपल, अगर और सोंठ इतने द्रव्य अधिक मिलाकर खाँड़ 8 भाग के स्थान में केवल दो भाग मिश्रण कर तैयार चूर्ण और भी लाभकारी होता है।

(2) ज्वरों पर— कचूर के साथ सोंठ, पित्तपापड़ा, देवदार, अनन्त मूल, कटेली, नागरमोथा, कुटकी और चिरायता समभाग लेकर अष्टमांश क्वाथ सिद्धकर उसमें शहद और पीपल का चूर्ण मिला सेवन करने से विषम ज्वर, जीर्ण ज्वर और सन्निपात का नाश होता है। यह क्वाथ सूतिकारोग में भी उत्तम लाभकारी है। अनन्तमूल के स्थान में कई लोग धमासा लेते हैं।

त्रिदोषज ज्वर में दोषों को पचाने के लिये कचूर के साथ बच, सोंठ, कायफल, गिलोय और धमासा समभाग लेकर अष्टमाँश क्वाथ सिद्ध कर सेवन कराने से लाभ होता है।

अजीर्णजन्य ज्वर— कचूर 1 तोला जौकुट कर आध सेर जल में अष्टमाँश क्वाथ सिद्धकर उसे दिन में 3 बार पिलावें। प्रायः सर्व प्रकार के ज्वरों पर इसे दे सकते हैं।

कफज ज्वर पर— कचूर के साथ पोखरमूल, भारंगी, पाठा, कायफल, देवदार, पित्तपापड़ा, नीम की छाल और काकड़ासिंगी समभाग का अष्टमांश क्वाथ सिद्ध कर सेवन करावें।

(3) वमन पर— कचूर के साथ दारूहल्दी, हरड़, सोंठ और पीपल समभाग लेकर चूर्ण बनावें।

मात्रा— 1½ माशा चूर्ण को घृत 6 माशे में मिला तक्र के साथ सेवन करने से त्रिदोषज वमन भी नष्ट होती है। अथवा–

कचूर 1 तोला का आधा सेर जल में अष्टमाँश क्वाथ सिद्धकर उसमें 3 माशे शहद और 6 माशे खाँड़ मिला बार-बार 1 से 5 बूंद तक पिलावें। इससे पित्त प्रकोप की शान्ति होती है और वमन दूर होता है।

(4) आमवात पर— कचूर के साथ सोंठ को पीसकर इसे पुनर्नवा (सांठ) के क्वाथ में मिलाकर पीने से एक सप्ताह में लाभ होता है। अथवा–

कचूर के साथ सोंठ, हर्र, बच, देवदार, अतीस और गिलोय समभाग लेकर अष्टमाँश क्वाथ सिद्धकर सेवन करने तथा पथ्य में रूक्ष आहार करने से लाभ होता है।

(5) ग्रहणी रोग पर— कचूर के साथ सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, जवाखार, सज्जीखार, पीपलामूल, बिजौरे नीबू का गूदा और सैंधानमक समभाग लेकर चूर्ण बना लें।

मात्रा— 1½ से 3 माशे तक चूर्ण काँजी के साथ प्रातः सायं सेवन करावें।

(6) गुल्म पर— कचूर के साथ समभाग सोंठ मिला अष्टमाँश क्वाथ सिद्धकर उसमें थोड़ा कालानमक मिला प्रातः सायं सेवन करावें।

---

*शठी पुष्कर मूलं च व्याघ्री श्रृंगी दुरालभा।
गुडूची नागरं पाठा किरातं कटुरोहिणी।।
एष शट्यादि कोवर्गः सन्निपात ज्वरापहः।
कास हृद् ग्रह........................।। (चक्रदत्त)

गुल्म पर शट्यादि कांकायन गुटिका भी उत्तम कार्य करता है। इसका प्रयोग 'बृहन्निघण्टुरत्नाकर' में देखिए। अथवा चरक संहिता चि0 स्था0 अ0 5 में शट्यादि गुटिका देखिए।

(7) हृल्लास, वमन व हैजा पर– कचूर के महीन चूर्ण को तुलसी पत्र स्वरस के साथ खरल कर मिर्च जैसी गोलियाँ बना रक्खें। बार-बार 1 से 3 गोलियाँ खाने से मितली और वमन में लाभ होता है। वमन के लिये देखिये ऊपर प्रयोग नं0 3।

हैजा पर– कचूर की ताजी जड़ का स्वरस और प्याज का रस एकत्र पिलाते रहने से लाभ होता है।

(8) अंगमर्द, थकावट, शैथिल्य पर– कचूर के पत्ते और अरणी के पत्ते दोनों को पानी में पकाकर उस जल से स्नान कराने से लाभ होता है।

(9) अर्श पर– इसका महीन चूर्ण 6 माशे तक नित्य प्रति प्रातः सायं जल के साथ 14 दिन सेवन करने से परम लाभ होता है।

(10) क्षुधामांद्य पर– इसका महीन चूर्ण लगभग 1½ या 2 माशे लेकर उसमें वह अच्छी तरह भीग जाय, सन जाय इतना शहद मिला नित्य प्रातः चाटने से भूख खुलकर लगती है। जठराग्नि प्रदीप्त हो उठती है।

(11) अंडकोष के शोथ पर– अण्डकोष पर वात के कारण सूजन आ गई हो तो कचूर के चूर्ण को जल में गाढ़ा लेप बना आग पर थोड़ा गर्म कर फोतों पर अच्छी तरह लगाकर ऊपर से इसी का पान अथवा खाने का पान बांध देने से शीघ्र लाभ होता है।